16 Nov·96 - 15 Mar. 97

हेमन्त-शिशिर '९६-'९७

रु. १५

द्वैमासिक

जीवनीय

स्वास्थ्य पत्रिका

- स्वस्थ शिशु कैसे प्राप्त करें ?
- मलेरिया : पहचान और इलाज
- मच्छरों का जैविक नियंत्रण
- डेंग्यू से सावधानी बरतें
- यौन संचारित रोग (एस.टी.डी.)

खांसी से बचाव और उपचार

मधुमेह का आयुर्वेदिक इलाज

कामकाजी बच्चों की सेहत

मोटापा घटाने के उपाय

गोरा बनाने वाली क्रीम के खतरे

• अन्य सभी स्थायी स्तंभों सहित •

जीवनीय द्वैमासिक

मानद संपादक मंडल (लखनऊ)
पं. काशीनाथ गोपाल गोरे
डॉ. पारस नाथ मिश्र
वैद्य पूर्ण चंद्र जैन
डॉ. प्रेम सागर
वैद्य बदलू राम रसिक
डॉ. बिशन नारायण मेहरोत्रा
वैद्य ब्रज बिहारी मिश्र
डॉ. एम. पी. शुक्ल
वैद्य राज किशोर मिश्र
डॉ. रेनु महेन्द्र
वैद्य सुल्तान अली खां
डॉ. सी.एस. सैंबी
डॉ. हरि प्रकाश शर्मा

कार्यकारी संपादक
डॉ. नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा

संयोजक
पं. माधवाचार्य

सम्पादकीय सहायक
कु.वीना टंडन
श्री के.बी.सिंह

आवरण सज्जा
अंजू विश्नोई, आद्या सिंह

इस पत्रिका के लिये कापार्ट से मिले अनुदान के हम आभारी हैं।

जीवनीय संबंधित समस्त विवादों का निपटारा लखनऊ के न्यायालयों के आधीन होगा।

जीवनीय सोसायटी की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, २५७ गोलागंज लखनऊ-१८ से मुद्रित तथा ई-III/ २४९ सेक्टर एच, अलीगंज लखनऊ-२० से प्रकाशित, संपादक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

संपादकीय कार्यालय
जीवनीय
ई-III/२४६, सेक्टर - एच
अलीगंज, लखनऊ - २२६ ०
फोन : ०५२२ - ३२७५६८.
फैक्स : ३८८६०६

वर्ष ७, अंक ४-५
१५ मार्च, १९९७

संपादकीय सलाहकार समिति
वैद्य अयोध्या प्रसाद अचल, गया
हकीम अल्ताफ अहमद आजमी, नई दिल्ली
डॉ. गीता बामेजई, नई दिल्ली
वैद्य विवेकानंद पांडे, नई दिल्ली
वैद्य भगवान दाश, नई दिल्ली
वैद्य माधाराम उनियाल,नई दिल्ली
डॉ. टी. के. अब्दुल रज्जाक,पालक्कड़
वैद्य शिव कुमार मिश्र, लखनऊ
वैद्य सुभाष रानाडे, पुणे
डॉ. उमा, बंगलूर
डॉ. भारतेन्दु प्रकाश, बाँदा
श्री ए.वी. बालसुब्रहमण्यम, मद्रास
वैद्य रमेश म. नानल, मुंबई
वैद्य भास्कर वि. साठ्ये, मुंबई
वैद्य नरेन्द्र सो. भट्ट, मुंबई
हकीम सफदर नवाब, लखनऊ
वैद्य वी.बी. म्हैस्कर, वड़ौदरा

जीवनीय में छपने वाले लेखों को पाठकों के लिए उपयोगी बनाने हेतु हम सतत् संपादकीय प्रयास करते हैं। परंतु रोग निदान एवं चिकित्सा एक कुशल चिकित्सक का ही काम है। स्वस्थ जीवन हेतु आवश्यक जानकारी अवश्य जीवनीय से प्राप्त करें पर रोग-चिकित्सा कुशल चिकित्सक की ही देखरेख में करें।

— संपादक

जीवनीय चंदे की दरें

	व्यक्तिगत (रुपये)	संस्थागत (रुपये)
वार्षिक	७५	१४०
द्वैवार्षिक	१४०	२५०
त्रैवार्षिक	२००	३५०
आजीवन	६५०	X

चंदा साधारण डाकखर्च सहित है पर यदि पत्रिका रजिस्टर्ड डाक से मंगाना हो तो उपरोक्त दरों में रु. ३५ प्रति वर्ष और जोड़ कर भेजें। चंदे की रकम ड्राफ्ट या मनीआर्डर द्वारा ही 'जीवनीय सोसायटी, लखनऊ' के नाम से भेजें। लोस्वापसंस के सदस्यों एवं स्वैच्छिक संस्थाओं को चंदे में १० प्रतिशत की छूट मिलेगी।

पारंपरिक चिकित्सा के विकास की चुनौतियां

भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व में न केवल तपेदिक, मलेरिया, फाइलेरिया व डेंग्यू जैसी बीमारियां तेजी से सर उठा रही हैं वरन् एड्स, मैड काऊ डिजीज व एबोला बुखार जैसे नए रोगों की चिकित्सा भी नहीं विकसित हो पा रही है। भारत जैसे विकासशील देश में हृदय रोगों, तंत्रिका तंत्र के रोगों व कैंसर आदि के रोगियों की बढ़ती संख्या व बढ़ती जनसंख्या भी 'सन् २००० तक सबको स्वास्थ्य' के लक्ष्य को असंभव बनाती जा रही है।

ऐसे में जहां एक ओर स्वास्थ्य सेवाओं में सभी चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सकों का सक्रिय योगदान पाने का प्रयास है, वहीं दूसरी ओर हमारे औषध व प्रसाधन सामग्री कानून (ड्रग्स एवं कास्मेटिक्स एक्ट) में हाल ही में हुए एक संशोधन से हमारी एलोपैथिक व सरकारी सोच के दिवालिएपन का अच्छा उदाहरण मिलता है। इस संशोधन के उपरांत देश में कोई भी व्यक्ति गठिया, पीलिया, दमा व पथरी जैसे रोगों के उपचार या रोकथाम के लिए कोई दवा उपलब्ध होने या बनाने का दावा तक नहीं कर सकता है क्योंकि यह गैर कानूनी होगा। उपरोक्त एक्ट में यह संशोधन इस तथ्य के बावजूद किया गया है कि इनमें से कई रोगों के उपचार की प्रभावी दवाएं भारतीय पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ दवाओं पर देश-विदेशों में हुए शोध कार्यों से उनके प्रभावी होने के प्रामाणिक सुबूत मिले हैं।

जहाँ एक ओर दुनिया भर में भारतीय व अन्य पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों पर आधारित औषधों के विकास के लिए अनुसंधान पर अरबों रुपये खर्च किए जा रहे हैं, हम अपनी चिकित्सा पद्धतियों की लगातार उपेक्षा कर रहे हैं। इसका सबसे दुःखद परिणाम तो यह हो रहा है कि शताब्दियों से प्रचलित हमारे औषधीय पौधों जैसे नीम, तुलसी, ब्राह्मी, कटुकी व हल्दी आदि पर आधारित औषधों पर पेटेंट लेकर विश्व बाजार में हमें ही किनारे किया जा रहा है। यह दुर्दशा मूलतः देश में पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों की लगातार की जा रही उपेक्षा का ही दुष्परिणाम है। यद्यपि पिछले वर्ष भारत सरकार ने देसी चिकित्सा पद्धतियों के लिए अलग मंत्रालय की स्थापना कर दी थी, पर समुचित धन या प्राथमिकता न देने से इस विभाग द्वारा कोई ठोस कदम उठाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। हमारी अधिकांश दवा कंपनियाँ भी इन पारंपरिक पद्धतियों के संपूर्ण विकास की जगह शीघ्र लाभ की आशा से जन-जन की इन पर श्रद्धा का दोहन कर विपणन द्वारा अधिक मुनाफे कमाने तक ही सीमित रहना चाहती हैं। ऐसे वातावरण में इनके चतुर्मुखी विकास के लिए प्रभावी रणनीति के अंतर्गत ठोस कार्यक्रम बनाकर शोध व विकास के साथ इसको जन-जन तक प्रभावी रूप से पहुँचाना होगा।

इस संदर्भ में पिछले दिनों उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के भी दूरगामी परिणाम होंगे। इस निर्णय के बाद एक चिकित्सा पद्धति के चिकित्सकों द्वारा दूसरी चिकित्सा पद्धति के समुचित ज्ञान व प्रशिक्षण के अभाव में उसकी औषधों के प्रयोग पर रोक लगेगी। यह ऐतिहासिक निर्णय निश्चय ही स्वागत योग्य है क्योंकि इससे विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में प्रभावी सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रयास करने ही होंगे। ये प्रयास राज्य सरकारों द्वारा केवल एक पद्धति के विशेषज्ञों को दूसरी पद्धति की औषधें वितरित करने के अधिकार देने मात्र से पूरे नहीं होंगे। इसके लिए विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के विशेषज्ञों को वैज्ञानिक चिंतन के साथ ऐसे रास्ते निकालने होंगे जो भविष्य में चिकित्सा जगत् को विश्व स्तर पर राह दिखा सकें।

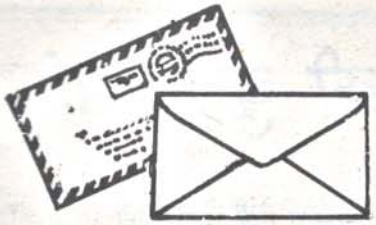

पाठकों के पत्र

प्रिय संपादक जी,

मुझे जीवनीय पत्रिका प्राप्त हुई। वास्तव में यह एक अमूल्य स्वास्थ्य पत्रिका है। इसमें प्रकाशित लेख जनकल्याणकारी हैं। यदि इस प्रकार की पठन सामग्री भविष्य में भी प्रकाशित होती रही तो यह पाठकों के लिए एक उपयोगी पत्रिका बनी रहेगी।

डा. ओ. पी. द्विवेदी, नागपुर

मुझे जीवनीय का आहार व स्वास्थ्य अंक पढ़ने का अवसर मिला। पूरी पत्रिका पढ़ने के बाद आनन्द प्राप्त हुआ। मेरा एक सुझाव है कि इसमें प्रकाशित होने वाले लेखों की यदि भाषा कुछ और सरल कर दी जाए तो यह और अधिक उपयोगी हो जायेगी। स्थायी स्तम्भ और बाक्स में पठन सामग्री अधिक–अधिक से देने का प्रयास होना चाहिए।

प्रकाश चन्द्र, बांदा

हमारा हमेशा यह प्रयास रहा है कि पत्रिका में जो भी लेख प्रकाशित हों उन सब की भाषा सरल हो। यदि आप हमारे पिछले दो–तीन अंक देखें तो उसमें हमने स्थायी स्तम्भ और रुचिकर बनाने का प्रयास किया है तथा बाक्स में भी बहुत सामग्री दी है। हम भाषा को और सरल करने का प्रयास करते रहेंगे।

संपादक

आपके द्वारा भेजा गया मधुमेह विशेषांक प्राप्त हुआ। यह अंक वास्तव में बहुत रोचक लगा। इसमें प्रकाशित सामग्री पाठकों के लिए बहुत उपयोगी है। मेरा यह विचार है कि ग्रामीण जनता की रुचि को ध्यान में रखकर इसकी भाषा और अधिक सरल बनाना उचित होगा।

विमल पाण्डेय, कासगंज

मैंने पत्रिका का वर्षा–शरद अंक पढ़ा। इसमें प्रकाशित सब लेखों को बहुत ध्यान से पढ़ने के बाद यह लगा कि पत्रिका के बहुमुखी दिशा निर्देशन से समाज अत्यन्त लाभान्वित हो रहा है। एक व्यावसायिक पत्रिका होने के बावजूद पत्रिका का स्तर उच्चतम है। पाठक इसमें प्रकाशित घरेलू और आयुर्वेदिक नुस्खों का भरपूर लाभ उठा रहे हैं।

डा. कमाल अहमद, सोनभद्र

हमें यह जानकर अच्छा लगा कि जीवनीय समाज में एक उपयोगी पत्रिका का स्तर प्राप्त करने में सफल हो रही है। हमारा हमेशा से यह प्रयास रहा है कि यह घर–घर की पत्रिका बन जाये। यदि आपने या किसी अन्य सज्जन ने इसमें प्रकाशित उपचार या रोकथाम के तरीकों से कोई लाभ उठाया है तो अपने अनुभव हम तक अवश्य पहुंचायें।

संपादक

कान, नाक, गले के रोग पर आधारित जीवनीय का अंक प्राप्त हुआ। इसमें प्रकाशित लगभग सभी लेख ज्ञानवर्धक हैं। यह स्वास्थ्य की एक अमूल्य पत्रिका है। मेरे विचार में यह जनकल्याण की दिशा में सराहनीय कदम है।

शुभेन्दु, रांची

मुझे जीवनीय का एक बहुत पुराना अंक पढ़ने का अवसर मिला। पत्रिका बहुत ज्ञानवर्धक और व्यावहारिक प्रतीत हुई। आज के समाज में ऐसी पत्रिका द्वारा मार्गदर्शन होना ही चाहिये। इस पत्रिका को कई बुक स्टाल पर पूछा लेकिन कहीं उपलब्ध नहीं हुई। मैं कुछ महीने पहले ही इस पत्रिका का नियमित ग्राहक बना हूँ। अब मुझे जीवनीय नियमित रूप से पढ़ने का आनन्द प्राप्त है। इसमें प्रकाशित जानकारी से शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहने में मदद मिलती है।

श्री देवी प्रसाद मेहरा, इटारसी

जीवनीय पत्रिका में प्रकाशित रोग और ज्योतिष की श्रृंखला पढ़ना बहुत आनन्द दायक लगता है। इस स्थायी स्तम्भ के अन्तर्गत राशि और भविष्य लेख ज्ञानवर्धक व उपयोगी हैं। इस पत्रिका में विषयवस्तु की इतनी गहरी जानकारी मिलने कै कारण मैं इसका नियमित पाठक बन गया हूँ। जीवनीय के हर आने वाले अंक के लिए उत्सुकता बनी रहती है।

वैद्य अर्जुन सिंह बघेल, सिन्धुदुर्ग

आपको जीवनीय पत्रिका ज्ञानवर्धक व उपयोगी लगी, इस विचार से हम प्रोत्साहित हुए। यदि आपके विचार और अनुभव भी हमें समय–समय पर प्राप्त होते रहे तो अपने पाठकों की रुचि का विशेष ध्यान रखने में हम और सफल हो सकते हैं। वैसे आप अपने अनुभव पर आधारित लेख भी लिखकर भेज सकते हैं।

संपादक

इस अंक में

रोग एवं स्वास्थ्य

सर्दियों में पुष्टिकारक व्यंजन 10
चिकनाई की अति से मोटापा 11
मोटापा घटाने के उपाय 12
बच्चों का कोलेस्ट्रोल से बचाव 14
पोषाहार संबंधी भ्रांतियां 15
आयुर्वेद कल, आज और कल 16
मालिश या वाह्य स्नेहन 19
गर्भकालीन सावधानियां 20
स्वस्थ शिशु कैसे प्राप्त करें ? 21
बच्चों के व्यवहार पर नियन्त्रण की दवा 23
कामकाजी बच्चों की सेहत पर खतरे 24
खांसी–कारण, बचाव एवं उपचार 26
मधुमेह की आयुर्वेदिक चिकित्सा 27
मधुमेह का देशी उपचार 29
गोरा बनाने वाली क्रीम के खतरे 31
स्वास्थ्य सेवाओं का ढ़ांचा 42
प्राकृतिक सगंध पौधे 68

संचारी रोग

मलेरिया : पहचान और इलाज 32
पाइरीथ्राइड लगी मच्छरदानी 34
मच्छरों का जैविक नियन्त्रण 35
कितनी सुरक्षित हैं मास्किटो मैट ? 36
डेन्ग्यू से सावधानी जरूरी 37
डेन्ग्यू बुखार 38
टी.बी. नियन्त्रण का नया कार्यक्रम 41
टीकाकरण – कहां तक लाभकारी 46
यौन संचारित रोग (एस.टी.डी.) 47

आहार द्रव्य

औषधोपयोगी नारियल 49
स्वादिष्ट और लाभदायक अमरूद 50
मूली 51

औषध द्रव्य

मसालों के औषधीय गुण 52
प्याज के औषधीय उपयोग 53
लाभदायक गुडूची 54
करेले के औषधीय उपयोग 55
नींबू से घरेलू इलाज 56

स्थायी स्तंभ

स्वास्थ्य समाचार 4
अनुसंधान समाचार 5
जीव विज्ञान समाचार 6
मधुसंचय 7
हेमन्त ऋतुचर्या 8
शिशिर ऋतुचर्या 9
योगासनों की विधि–ताड़ासन 18
दादी मां के नुस्खे 40
स्वयं बनायें 57
रोग एवं ज्योतिष 57
ज्ञानकोष–अर्बुद 58
समस्या समाधान 59
लो.स्वा.पं.सं.स समाचार 60
जीवनीय समाचार 61
सार–संक्षेप 62
पाठकों की प्रतिक्रिया 64
पशु और स्वास्थ्य 65
सक्रिय योगदान – वीहाई 69

रेबीज एक खौफनाक बीमारी

भारत में खौफनाक बीमारी रेबीज से सबसे अधिक लोगों की मौत होती है। हमारे देश में रोजाना करीब 300 लोग कुत्ते के काटने के कारण होने वाली इस बीमारी से मरते हैं। इंडियन जनरल आफ विनिकल प्रैक्टिस (आई.जे.सी.पी.) के मेडीन्यूज के अनुसार विश्व में रेबीज के कारण होने वांली मौतें में से 90 से 95 प्रतिशत मौतें भारत में ही होती है।

लक्षद्वीप एवं अंडमान निकोबार द्वीप समूह को छोड़ कर पूरे भारत में यह जानलेवा रोग साल भर कहर बरपाता रहता है। मनुष्यों में रेबीज मुख्य तौर पर कुत्तों के काटने से होता है। भारत में रेबीज के 98 प्रतिशत मामले कुत्तों के काटने के कारण ही होते हैं। अनुमानतः प्रति वर्ष 30 लाख लोगों को कुत्ते काट खाते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) की ओर से रेबीज के बारे में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व भर में कुत्तों के काटने से रेबीज के सबसे अधिक 63 प्रतिशत, जंगली जानवरों के काटने से 28 प्रतिशत और चमगादड़ों के काटने से दो प्रतिशत मामले सामने आते हैं।

वजन घटाने वाला साबुन

चीन में अनेक लोग वजन घटाने के लिए 'साफ्ट' ब्रांड साबुन का उपयोग कर रहे है। चीन की निवारक औषधि सोसाइटी द्वारा किए गए सर्वेक्षण के मुताबिक इस साबुन के उपयोग से 76 प्रतिशत मामलों में वजन कम हुआ है। इस साबुन का आविष्कार पारम्परिक चीनी चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा तीन वर्षो के शोध के उपरांत हो पाया है।

भारत में अंधता

यह आंकड़ा अपने आप में इतना दुखद है कि दुनिया के अंधों की लगभग एक तिहाई आबादी भारत में है। भारत में अंधता का मुख्य कारण मोतियाबिंद है। इस वक्त देश में मोतियाबिंद के करीब दो करोड़ बीस लाख आपरेशन होने बाकी हैं। अब केन्द्र सरकार ने पूरे देश में अंधता निवारण के लिए लगभग 5 अरब रुपये की एक योजना बनाई है।

भारत में कई नेत्रहीन ऐसे हैं जिन्हें नेत्रदान मिल जाए तो वे भी दुनिया देख सकते हैं पर यह दूसरा दुखद पहलू है कि लोग नेत्रदान के लिए आगे नहीं आते।

उत्तर प्रदेश में हर वर्ष बढ़ती कमजोर पीढ़ी

कुपोषण, गरीबी और बदलती जीवन शैली के कारण देश में एक कमजोर पीढ़ी जन्म ले रही है। प्रदेश में हर साल लगभग एक तिहाई शिशु कम वजन के पैदा होते हैं। सामान्य शहरी क्षेत्रों में 30 फीसदी कम वजनी शिशुओं की पैदाइश है, जबकि ग्रामीण और झोपड़पट्टी क्षेत्रों में लगभग 40 फीसदी शिशु कम वजन के पैदा होते हैं।

चिकित्सा विज्ञानियों के शोध कार्यो और सर्वेक्षण से पता चला है कि प्रदेश में गोरखपुर में 40.7 फीसदी और वाराणसी अंचल में 39 फीसदी बच्चे कम वजन के पैदा होते हैं। हाल में लखनऊ में क्वीन मेरी अस्पताल को आधार मानकर किये गये सर्वेक्षण से पता चला है कि राजधानी में कम वजनी बच्चों की पैदाइश 25.2 प्रतिशत है।

यूनिसेफ के सर्वेक्षण के अनुसार देश में कलकत्ता के झोपड़पट्टी इलाकों में 56.1 प्रतिशत व मद्रास में 25.9 प्रतिशत बच्चे कम वजन के पैदा होते हैं। वैसे देश भर में सामान्य ग्रामीण इलाकों में औसतन 35 फीसदी कम वजनी बच्चों की पैदाइश है। चिकित्सा विज्ञानियों की जानकारी के मुताबिक जहां कम वजन के कारण बच्चों की मृत्यु दर अधिक है, वहीं ऐसे बच्चों का विकास भी धीमा रहता है।

देश में बच्चों की सलाना जन्म दर जनसंख्या की 3 फीसदी है। इस लिहाज से देश में हर साल लगभग पौने दो करोड़ बच्चे पैदा होते हैं, जिनमें लगभग 80 लाख शिशु औसतन कम वजनी होते हैं। इसके तहत उत्तर प्रदेश में हर साल पैदा होने वाले लगभग 45 लाख शिशुओं में लगभग साढ़े तेरह लाख शिशुओं का पैदाइशी वजन कम होता है।

हृदय रोग उपचार के लिए नया उपकरण

देश में पहली बार हृदय की धमनी में एकत्रित वसा को निकालने के लिये एक नये तरह का उपकरण पुल बैंक अथेटक्टोमी इस्तेमाल किया गया है। इंद्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल के वरिष्ठ डाक्टर पुरुषोत्तम लाल और प्रदीप जैकब ने एक 45 वर्षीय रोगी पर यह उपकरण पहली बार इस्तेमाल किया। इस उपकरण में एक ब्लेड लगा होता है जिसे एक मोटर की मदद से एक मिनट में 2000 बार घुमाया जाता है जिससे धमनी में जमा वसा कट कर एक विशेष चैनल में जमा हो जाती है। यह आपरेशन स्थानीय एनीस्थीसिया देकर किया जाता है और रोगी को एक दो दिन में ही छुट्टी मिल जाती है। यह उपकरण धमनी से वसा हटाने के लिये इस्तेमाल होने वाले अन्य उपकरणों से बेहतर है और जटिल रुकावटों को हटाने में यह वर्तमान उपकरणों से अधिक उपयोगी साबित होगा।

कैंसर में बेहतर 'कीमो प्रिवेंशन' तकनीक

कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियों की रोकथाम व इलाज आज भी चिकित्सीय जगत में जटिल पहेली बना हुआ है। किन्तु आई०आई०टी० मुंबई के रसायन शास्त्र विभाग के वैज्ञानिकों ने एक नया विकल्प तलाश लिया है। वैज्ञानिक अनिल कुमार सिंह व बी.ए. कुमार ने कैंसर के उपचार के लिए कीमोथिरैपी के बजाय 'कीमोप्रिवेन्शन' यानि रोकथाम की विधि को बेहतर बताते हुए रेटीनाइड (विटामिन 'ए') नामक दवा का परिवर्तित यौगिक विकसित किया हैं जो कैंसर के लाइलाज रोग में उपयोगी साबित हो सकता है।

असरकारी एस्प्रीन

नए शोधों के आधार पर और वैज्ञानिकों के अनुसार कैंसर, गर्भावस्थाजनित तनाव और माइग्रेन में एस्प्रीन बड़ी असरकारक है। फेफड़े के कैंसर के पश्चात वृहदांत्र एवं मलद्वार के कैंसर तथा भोजन नलिका एवं पेट के अर्बुद जैसी स्थितियां कैंसर से होने वाली मृत्यु के प्रमुख कारक हैं। हर साल लाखों लोग कैंसर के कारण मृत्यु के मुंह में समा जाते हैं।

हाल ही में 6 लाख से अधिक व्यक्तियों पर किए गए एक छह वर्षीय अध्ययन ने एस्प्रीन के एक माह में 16 बार या इससे अधिक नियमित इस्तेमाल से पाचन नली के कैंसर में 40 प्रतिशत गिरावट के साथ जोड़ा है। प्रायोगिक अध्ययनों में एस्प्रीन लघु अर्बुदों के विकास को रोकती है। अमेरिकी कैंसर सोसाइटी के शोधकर्ता और इस शोध अध्ययन के प्रमुख डा. माइकल थुन के अनुसार–ऐसा क्यों होता है? हमें अभी यह पता करना है। लेकिन इस पर अभी और अधिक शोध होना शेष है कि क्या एस्प्रीन की छोटी मात्रा का उपचार पाचन नली के कैंसर से होने वाली मृत्यु से बचाव कर सकता है।

इतना ही नहीं एस्प्रीन माइग्रेन (आधासीसी का दर्द) में भी बड़ी फायदेमंद साबित हो रही है। दुनिया में करोड़ों लोग इस अत्यंत दुःखदायी पीड़ा से ग्रस्त हैं। शोधकर्ताओं को अभी तक इसके कारण ज्ञात नहीं है और धमनियों को फैला या संकुचित कर देने वाली दवाओं के ठेठ उपचार इससे त्रस्त सभी व्यक्तियों को लाभ क्यों नहीं पहुंचाते। हारवर्ड विश्वविद्यालय में किए गए एक शोध से पता चला है कि एस्प्रीन माइग्रेन में काफी लाभकारी सिद्ध हुई है। शोधकर्ताओं के अनुसार संभवतः एस्प्रीन रक्त बिंबाणुओं की सक्रियता को कम कर देती है।

अनेक रोगों में रामबाण बनी इस एस्प्रीन के कई दुष्प्रभाव भी सामने आए है। इसे ज्यादा मात्रा में लेने से श्लेष्मा (म्यूक्स) यानी पेट की अंदरूनी झिल्ली में जलन भी हो सकती है। जिसके कारण चक्कर या उल्टियां भी आ सकती है। शिशुओं व किशोरों को चिकित्सक की राय बिना एस्प्रीन कभी नहीं देनी चाहिए। डाक्टरों का कहना है कि एस्प्रीन का इस्तेमाल डाक्टरों की सलाह और हमेशा दूध या फल के साथ करना चाहिए ताकि इसके नुकसान से बचा जा सके।

पेटेंट कानूनों पर एक गोष्ठी

हल्दी व नीम के पेटेन्ट होने के बाद देश के वैज्ञानिकों में अब अन्य बौद्धिक सम्पदा को लेकर चिंता बढ़ी है। वैज्ञानिकों ने इस बात पर आशंका जाहिर की है कि भविष्य में बौद्धिक सम्पदाओं को भी पेटेंट कराया जा सकता हैं इसे रोकने के लिए वैज्ञानिकों ने देश में उपलब्ध इस सम्पदाओं के बारे में अधिक से अधिक जानकारी एकत्र करने की आवश्यकता पर बल दिया है, ताकि पेटेंट आवेदन को किसी भी मंच पर चुनौती दी जा सके।

इस विषय पर पिछले अक्टूबर में केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान में दो दिवसीय गोष्ठी में देश भर से आये वैज्ञानिकों ने विचार विमर्श किया। संगोष्ठी में डा. एन. आर. सुब्बाराम ने गैट समझौते के बारे में प्रकाश डालते हुए कहा कि पुरानी आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को पेटेंट होने से बचाया जाना चहिए। उन्होंने कहा कि बौद्धिक सम्पदा पर अध्ययन इस प्रकार होना चाहिए ताकि भारतीय सम्पदा पर किये जा रहे किसी भी पेटेंट आवेदन को अमरीकी कोर्ट या अंतराष्ट्रीय कोर्ट में चुनौती दी जा सके और यह कहा जा सके कि यह चीज हमारे देश में पहले से ही उपलब्ध थी।

गोष्ठी में सी.डी.आर.आई. के पूर्व निदेशक डा. नित्यानंद ने गैट समझौते के बाद की स्थितियों को अवगत कराया। उन्होंने उन सभी बिंदुओं पर चर्चा की, जिनके कारण विकासशील देशों की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड सकता है। पेटेंट कानून में किये जाने वाले परिवर्तन की जानकारी देते हुए उन्होंने इसके विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की तथा वैज्ञानिकों का आह्वान किया कि वे इस विषय पर गहन विचार कर सरकार पर यह दबाव डालें कि कोई अनुचित नियम न बने।

सी.डी.आर.आई. के वर्तमान निदेशक डा. वी.पी.कम्बोज ने यह बात उठायी कि यदि हम गैट समझौते से बाहर निकल आते हैं तो क्या उसके बिना हम अलग रह पायेंगे? क्या इस स्थिति से निपटने में हमारे वैज्ञानिक सक्षम हैं? उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि गैट में जो नियम हमारे हित में है, उनका हमें लाभ उठाना चाहिए। विज्ञान पालिसी विशेषज्ञ दिनेश अबरोल ने विश्व के अन्य देशों द्वारा पेटेंट संशोधनों की व्याख्या की। समापन समारोह की अध्यक्षता करते हुए उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति एस.एच.ए. रजा ने नीम और करेला की महत्ता पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि अनेक रोगों में लाभदायक नीम और करेला को हम पेटेंट कराने में असफल रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा कि कुछ आदिवासी क्षेत्रों में अनेक उपयोगी पौधों का इस्तेमाल स्थानीय लोग करते हैं, इनकी तरफ भी हम लोगों का ध्यान जाना चाहिए। संगोष्ठी की वैज्ञानिक समिति के संचालक डा. नरेंद्र मेहरोत्रा ने जैव पदार्थो के उत्पाद पेटेंटों से जुड़ी समस्याओं के बारे में आगाह करने के साथ साथ जो प्रस्ताव पारित हुए थे, उनकी विस्तृत जानकारी भी दी।

नीम का अमरीकी मर्ज

नीम भारत का सुपरिचित वृक्ष है। भारत में औषधीय कामों में नीम के विभिन्न हिस्सों का उपयोग शताब्दियों से प्रचलित रहा है। आयुर्वेद में नीम को सर्व रोग निवारणी कहा गया है। इसके बीज, छाल, लकड़ी, जड़, शाखाएं, फूल, पत्ती, फल–सभी औषधि रूप में प्रयोग होते हैं। पचास व साठ के दशकों में ही कुछ भारतीय वैज्ञानिकों ने नीम की निम्बोलियों पर महत्वपूर्ण शोध किये थे। शोध पत्रों में छपा कि नीम की निम्बोलियों का रस कीटनाशक है। निम्बोलियों के इस रस को एजाडाइरेक्टिन कहा गया। इसके औषधीय गुण इतने चमत्कारिक थे कि इसने सारी दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। एजाडाइरेक्टीन की खोज एवं उसे उल्लेखनीय जैविक क्रियाकलापों के चलते नीम के हर हिस्से का विस्तारपूर्वक परीक्षण शुरू किया गया। जर्मनी, इग्लैंड, पाकिस्तान व अमरीका के वैज्ञानिकों ने अब तक इनसे 381 यौगिक खोज निकाले हैं।

यद्यपि सबसे पहले 1942 में भारत की केन्द्रीय वैज्ञानिक और औद्योगिक परिषद ने नीम के तेल, टहनियों, जड़ व छाल से एक रासायनिक घटक निम्बिन प्राप्त किया था। बावजूद इसके निंबोलियों के सत (लुगदी) के सर्वव्यापी उपयोग जानने का श्रेय अमरीकी वैज्ञानिकी राबर्ट लार्सन को जाता हैं। इन्होंने भारत में आकर निंबोलियो का एक फार्मूलेशन (मार्गोसान ओ) के उपयोग को हरी झण्डी दिखायी। राबर्ट लार्सन ने अपनी इस खोज को 1991 में ही पेटेंट करा लिया था और इन्होंने पेटेंट अधिकार को अमरीकी कंपनी डब्ल्यू.आर.ग्रेस के हाथों बेच दिया था।

आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली में नीम की छाल से ज्वर का उपचार किया जाता है। यही नहीं, त्वचा संबंधी विकारों को दूर करने में नीम की पत्तियां काफी लाभदायक होती है। नीम का तेल विरेचक व कृमिनाशी माना जाता है। ताजी टहनियां दातून के तौर पर विशेषतया पाएरिया रोग में अत्यंत लाभकारी हैं। भारतीय वैज्ञानिकों ने नीम की निंबोलियों की शक्ति शाली फीडिंग विरोधी क्रियाशीलता के बारे में काफी पहले खोज कर ली थी। लेकिन न तो सरकारी तंत्र ही और न भारतीय रसायन शास्त्री इस खोज का महत्व समय रहते समझ पाये। इस अवसर को इस तरह पश्चिम ने अपने हाथ में ले लिया और हम केवल चिंता जताते ही रह गये।

पार्किन्सन का उपचार सम्भव

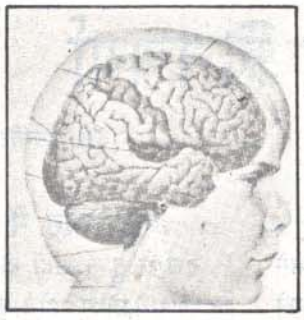

पार्किन्सन मस्तिष्क की एक खतरनाक बीमारी है जिसे लाइलाज माना जाता रहा है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने कुछ हद तक सफलता हासिल कर पार्किन्सन के कारण का पता लगा लिया है। मस्तिष्क कैसे कार्य करता है और उसके अन्दर क्या–क्या हरकतें चलतीं रहती है–इसके लिए कैट स्कैनिंग बड़ी कारगर साबित हो रही है। इसके माध्यम से हानिरहित पदार्थो के रेडियोधर्मी आइसोटॉप्स को रक्त में मिला कर यह दर्शाया जाता है कि दिमाग को विभिन्न कामों के लिए कितनी और किस तरह की जरूरत करनी पड़ती है। कैट स्कैनिंग का अब पार्किन्सन की बीमारी से पीड़ित रोगियों के दिमाग में होने वाली हलचलों का अध्ययन करने के लिए इस्तेमाल किया जाएगा।

लंदन के हैमरस्मिथ अस्पताल में चिकित्सा अनुसंधान परिषद की साइक्लोट्रॉन यूनिट में प्रोफेसर डेविड ब्रुक्स के नेतृत्व में एक दल ने कैट स्कैनिंग के इस तरह के उपयेग पर शोध कार्य शुरू भी कर दिया है। पार्किन्सन बीमारी पर किए गए हाल के कुछ शोध कार्यो से यह पता चलता है कि इस बीमारी की विभिन्न अवस्थाओं के लिए किस तरह बेहतर उपचार विकसित किया जा सकता है। अब इसका पार्किन्सन बीमारी की सही और भरोसेमन्द जांच के लिए उपयोग किया जाने लगा है। पार्किन्सन एक दिमागी बीमारी है जिसमें दिमाग के एक विशेष समूह के न्यूरॉन नष्ट होना शुरू हो जाते हैं। ये न्यूरॉन दिमाग की कोशिकाओं को आपस में जोड़ते हैं और उनसे बड़ी मात्रा में दिमाग को काम करने के रासायनिक संकेत देने वाला डोपामिन निकलता है। इन न्यूरॉनों के नष्ट होने से रोगी का शरीर के विभिन्न अंगों पर नियंत्रण कमजोर हो जाता है, उसके शरीर में कंपकपाहट होने लगती है और उसे अपने कामों में नियंत्रण रख पाना मुश्किल हो जाता है।

प्रोफेसर ब्रुक्स अब कैट स्कैनिंग का यह पता लगाने में भी इस्तेमाल कर रहे हैं कि पार्किन्सन के मरीज अपने अंगों पर कैसे नियंत्रण खो देते हैं। इस संबंध में प्रोफेसर ब्रुक्स ने अब यह निष्कर्ष निकाला है कि दिमाग द्वारा संकेत भेजने की पूरी प्रक्रिया के सम्पन्न हो जाने के बाद इसे सेरिबेलम, यानी अनुमस्तिष्क में दर्ज कर लिया जाता है ताकि भविष्य में दोबारा उसकी जरूरत पड़ने पर उसे तुरन्त दोहराया जा सके।

बाद में इन्हीं प्रयोगों को पार्किन्सन बीमारी से पीड़ित लोगों पर दोहराया गया। दोनों ही स्थितियों में रोगियों के दिमाग से निकले संकेतों के अंगों तक पहुंचने में किसी तरह का कोई अन्तर नहीं था यानि संकेत सिर्फ मोटर कॉर्टेक्स से निकलकर रीढ़ की ओर से बढ़ते थे वे दिमाग के सर्किट के भीतर से होकर नहीं गुजर पाते थे। इन रोगियों को बाद में डोपामिन के अस्थाई तौर पर बढ़ाने वाली दवाएं दी गई और फिर जब दोबारा इन प्रयोगों को दोहराया तो नतीजा वास्तव में चौकाने वाला था। डोपामिन के उपलब्ध होते ही पार्किन्सन के मरीजों के दिमाग का भीतरी सर्किट सक्रिय हो उठा और उनमें से ही होकर संकेत संबंधित अंगों तक पहुंचे।

विटामिन 'के'

हमारे खून में थक्के बांधने का कार्य विटामिन 'के' करता है। विटामिन 'के' हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। सामान्यतया किसी को चोट लग जाए और खून निकलने लगे तथा इस खून को यदि थोड़ी देर निकलने दें तो खून धीरे–धीरे गाढ़ा होकर उसी स्थान पर जम जाता है। इस प्रकार विटामिन 'के' खून को बहने से रोकने में मदद करता है। यदि ये थक्के ही न बंधें तो चोट लगने पर खून निरन्तर बहता ही रहेगा जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यदि इस विटामिन की कमी हो जाए तो थक्के बांधने में योगदान देने वाले तीन घटकों में कमी आ जाती है और चोट लगने पर खून के थक्के नहीं बंध पाते तथा खून निरन्तर बहता रहता है। इससे थोड़ा सा कटने पर भी खून बड़ी तेजी से बहने लगेगा।

विटामिन 'के' के दो प्रकार होते है– विटामिन 'के1' और विटामिन के2'। यह विटामिन विभिन्न प्रकार की सब्जियों में पाया जाने वाला पीला तैलीय पदार्थ होता है। 'के2' पीला मोम जैसा पदार्थ होता है जो जीवाणुओं (बैक्टीरिया) द्वारा उत्पन्न होता है, विटामिन 'के1' पत्तेदार हरी सब्जियों व बंद गोभी में पाया जाता हैं विटामिन 'के2' हमारी आंतों में विद्यमान बैक्टीरिया से प्राप्त होता है। ये बैक्टीरिया हमें इस विटामिन की निरन्तर आपूर्ति करते रहते है।

विटामिन 'के1 और के2' वसा में घुलनशील होते हैं, अतः ये घुलकर वसा में ही रहते हैं। इनकी कमी से पाचन, वसा एवं तेलों को सोखने की क्षमता में कमी आ जाती है। विटामिन 'के। तथा के2' आसानी से इंजेक्शन या टेब्लेटों द्वारा दिया जा सकता है। विटामिन 'के' की कमी से गुर्दे के रोग हो जाते हैं।

कभी–कभी नवजात बच्चों में भी विटामिन 'के' की कमी पाई जाती है। इसके परिणामस्वरूप बच्चों के अंगों से निरन्तर रक्त स्राव होता है। बच्चे को मां के दूध से भी कम मात्रा में विटामिन 'के मिलता है, अतः बच्चों को भी अधिक मात्रा में विटामिन 'के' के इंजेक्शन दिये जाते हैं।

हेमन्त ऋतु में हितकर दिनचर्या

वैद्य मनमीत सिंह, लखनऊ

शरद ऋतु के बाद हेमन्त का आगमन होता है, इसका समय लगभग 16 नवम्बर से 15 जनवरी (मार्गशीर्ष एवं पौष) के मध्य माना जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से हेमन्त को ऋतुओं में श्रेष्ठ कहा जाता है। सूर्य के दक्षिणायन में रहते हुए यह विसर्ग काल की अन्तिम ऋतु है, इसे शीत की ऋतु भी कहा जाता है। इस ऋतु में सूर्य मण्डल ओस के कणों से प्रभावित होता है, एवं सब दिशाओं में कोहरा रहता है। वायु शीतल होने के कारण रोंगटे खड़ी करती है। इस ऋतु में अनेक सुन्दर–सुन्दर फूल खिलते हैं व जन्तु हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं।

हेमन्त काल का शरीर पर प्रभाव

इस ऋतु में शीत एवं शीतल वायु के प्रभाव से बचने के लिए सभी प्रकार की अग्नियां शरीर के भीतर प्रविष्ट हो जाती है, जिससे जठराग्नि प्रबल (तीव्र) हो जाती है। अतः इस ऋतु में पौष्टिक भोजन का सेवन करना चाहिए। यदि पुष्टिकारक आहारों का प्रयोग नहीं किया जाता है तो उपयुक्त ईधन नहीं मिलने के कारण जठराग्नि मन्द हो सकती है या अत्याधिक तेज होकर रस–रक्त आदि धातुओं को पचाने लगती है। ऐसे में कमजोरी भी बढ़ सकती है।

ठंडी एवं रूखी वायु के कारण ठंड से शरीर में जकड़न, जुकाम एवं बुखार हो जाता है। त्वचा के सूखा होने तथा वायु के ठंडे होने से खांसी, जुकाम, दमा, गठिया आदि बढ़ने की सम्भावना होती है। इस ऋतु में प्रतिदिन स्नान न करने और कपड़े न बदलने से त्वचा में खुजली (स्केबीस) एवं अन्य चर्म रोगों के होने की सम्भावना प्रबल रहती है।

हेमन्त ऋतु में आहार-विहार

शीत ऋतु ही मात्र ऐसी ऋतु है जिसमें हमें शरीर और स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारने में प्रकृति से मदद मिलती है। इस ऋतु में तेज भूख लगने पर, कामों में व्यस्त रहने के कारण भूख मर जाने पर भोजन करना, शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अतः हमें चिकने, मधुर, लवण और अम्ल रस वाले पौष्टिक व बल बढ़ाने वाले पदार्थ– घी, दूध, मलाई, शहद, मिश्री, पुराना गुड़, रबड़ी, मालपुआ, हलवा, मुरब्बा, मौसमी फल, असगन्ध, मूसली, शतावरी, कौंच के बीज, शुद्ध शिलाजीत, रसायन एवं वाजीकारक योग लाभकर होते हैं।

इन दिनों में मालिश करने से त्वचा में स्निग्धता एवं कोमलता आती है साथ ही बल भी बढ़ता है। मालिश के लिए सरसों का तेल सर्वोत्तम है। इसमें कपूर मिलाकर मालिश करने से गठिया के दर्द में लाभ मिलता है। नहाने से पहले सप्ताह में एक या दो बार उबटन (सरसों, तिल, हल्दी) लगाने से लाभ मिलता है। भाप की सेंकाई करने से अंग–प्रत्यंग की जकड़ाहट, आलस्य एवं सर्दी दूर हो जाती है। स्नान गुनगुने पानी से करना चाहिए। कपड़े पहनने से सर्दी से बचाव होता है। प्राणायाम करने से भी सर्दी का प्रकोप कम होता है। इस ऋतु में व्यायाम करने से शरीर में हलकापन एवं काम करने की क्षमता बढ़ती है। दिन में धूप में बैठना, रात में कमरा गरम रखना एवं गर्म जगह पर रहना लाभकर है। अगर खुली जगह में घूमने जायें तो ऊनी वस्त्रों से शरीर को ढक लें, या खुले वाहनों में न घूमें।

हेमन्त ऋतु में वर्जनीय

इस ऋतु में सर्दी के कारण वायु एवं कफ संबंधी विकार होने की प्रबल सम्भावना होती है, वायु बढ़ाने वाले द्रव्य, सत्तू, बरफ, कम खाना, रूखा, कड़वा, ठंडा अन्नपान, आलू, पुराना एवं सूखा अन्न इस ऋतु में वर्जनीय है। भोजन कम करने से, अथवा भूख लगने पर भोजन न करने से, जठराग्नि शरीर की धातुओं को जलाने लगती है, अतः वात व्याधियों जैसे गठिया आदि की सम्भावना बढ़ जाती है, अतः हमें ऐसा आहार विहार नहीं करना चाहिए, जिससे वात एवं कफ बढ़े। जब तक तेज ठंड न पड़े, अधिक भारी एवं पौष्टिक आहार, रसायन एवं वाजीकारक द्रव्यों का प्रयोग कम करना चाहिए।

रात में देर से भोजन करना, एवं देर तक जागना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। सर्दी में अधिक ढंडे या अधिक गर्म पानी से स्नान नहीं करना चाहिए। रात में कमरे को गर्म कर सकते हैं परन्तु अंगीठी का प्रयोग सावधानी पूर्वक करें, कभी कभी बंद कमरे में अंगीठी जलाने से उसका धुआँ (कार्बन डाई आक्साइड एवं कार्बन मोनो आक्साईड) बाहर न निकल पाने से स्वास्थ्य के लिए हानिकर साबित होता है। रात में सोते समय मुंह ढक कर भी नहीं सोना चाहिए। दमा के रोगी इस ऋतु में ठंडे पानी से स्नान न करें, अन्यथा बीमारी बढ़ने की सम्भावना होती है।

शिशिर ऋतुचर्या

शिशिर ऋतु को उत्तम स्वास्थ्य काल की दूसरी ऋतु माना है। वैसे इसी ऋतु से आदान काल भी आरंभ होता है। आदान काल में जीव जन्तुओं तथा वनस्पतियों में रस की कमी होने लगती है जिससे स्वास्थ्य व शक्ति की कमी होने लग जाती है। वातावरण में तिक्त रस की उत्पत्ति होती है। तिक्त रस वायु व आकाश महाभूतों से मिलकर बनता है, अतः इस ऋतु में वायु का प्रभाव अधिक रहता है। इससे त्वचा में रूक्षता (रूखापन) उत्पन्न होती है तथा शरीर में वायु की वृद्धि भी होती है। ऋतु के प्रभाव से कफ दोष का संचय होता है। यह वायु की वृद्धि कफ को अत्याधिक मात्रा में बढ़ने से रोकती है क्योंकि यदि वात और कफ अत्यधिक बढ़ जायें तो पित्त स्वाभाविक रूप से क्षीण हो जायेगा। पित्त के क्षीण होने पर शरीर की सभी अग्नियां स्वाभाविक रूप से शान्त होने लगेंगी जिससे शारीरिक सामान्य क्रियायें रुक जायेगी और जीव (मनुष्य) भयंकर रुप से रोगग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो सकता है।

इस ऋतु में अधिक ठन्ड पड़ने व शीतल हवायें चलने से भी अस्थाई रूप से वात व कफ का प्रकोप हो जाता है। इससे विभिन्न वातज तथा वात कफज रोग उत्पन्न हो जाते है जैसे– प्रतिश्याय (सर्दी जुकाम), शिरःशूल (सिरदर्द), आमवात (गठिया), निमोनिया, खाँसी, ज्वर, गला बैठना आदि। इस ऋतु में भी चन्द्रमा का ही प्रभाव अधिक रहता है अतः मधुर रस की उत्पत्ति के कारण कफ की वृद्धि होती है।

शिशिर ऋतु में भी पाचन शक्ति प्रबल रहती है परन्तु हेमन्त की अपेक्षा कम क्योंकि ज्यों–ज्यों शिशिर ऋतु का समय बढ़ता जाता है त्यों–त्यों कफ की वृद्धि (संचय) होने से भूख कम होने लगती है।

इस ऋतु में भी पौष्टिक, गरिष्ठ, स्निग्ध व उष्ण भोजन करना चाहिये। ठन्ड तथा हवा से बचने का उपक्रम करना चाहिये जैसे गरम स्थान में रहना, सीधी ठन्डी हवा से बचना, वात–कफ शामक आहार विहार का सेवन करना जैसे मदिरा, गोश्त, मछली, अन्डा, चाय, काफी, केशर, बादाम, कस्तूरी, अम्बर आदि।

शरीर, सिर, सीना व हाथ–पैरों को कपड़ों से ढक कर रखना चाहिये। वात–कफ शामक पदार्थ जैसे सोंठ, अदरख, हींग, काली मिर्च, पिप्पली, लहसुन, जायफल, मेथी, असगन्ध, जीरा, कलौंजी, काला तिल, तुलसी, सोहागा आदि का प्रयोग करना चाहिये।

वातवर्धक अनाज आदि जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, चना, मटर, मसूर, लाल मिर्च, पत्तेदार सब्जियों आदि का लगातार ज्यादा प्रयोग नहीं करना चाहिये परन्तु बथुआ के पत्तों व मेथी के पत्तों का साग प्रयोग किया जा सकता है बशर्ते इसमें डंठल न हों। फलों व मेवों में – अनार, अमरूद, पपीता, बादाम, काजू, अखरोट, पिस्ता, चिरौंजी, चिलगोजा आदि लेना स्वास्थ्यवर्धक है। सब्जियों में गोभी, आलू, टमाटर, बैंगन, गाजर, चुकन्दर आदि खाये जा सकते है।

नियमित व्यायाम व सरसों के तेल की मालिश अवश्य करना चाहिये। मीठे, नमकीन व खट्टे पदार्थो का सेवन करना चाहिये। भोजन समय से करना चाहिये। प्रातः उठकर शीघ्र नाश्ता करना चाहिये। भूखे न रहें क्योंकि रातें अधिक बड़ी होने के कारण रात का खाया खाना पूर्णतया पच चुका होता है। खाली पेट अधिक देर तक रहने से पाचकाग्नि दूषित हो जाती है।

न तो अधिक गरम पानी से और न अधिक ठंडे पानी से नहाना चाहिये। गुनगुना जल नहाने के लिये उपयुक्त रहता है अधिक ठन्डे पानी से हानि होने की संभावना रहती है। अधिक गरम पानी से नहाने से त्वचा के रोम छिद्र ज्यादा खुल जाते हैं जिससे ठंडी वायु व ठन्ड प्रवेश कर वात प्रकोप कर दोषों की विषमता उत्पन्न करते हैं। तेल मालिश कर गुनगुने पानी से नहाकर सूखे तौलिये से शरीर को रगड़ कर पोंछ देना चाहिये।

गेहूं, चावल, उड़द, गुड़, तिल, घी, दूध, मक्खन, खोये से बने पदार्थो का सेवन करना चाहिये।

अपनी प्रकृति के अनुसार ही आहार–विहार करना चाहिये। वातज व कफज प्रकृति के लोगों को उष्ण पदार्थो का उपयोग करना चाहिये। कफज प्रकृति के लोगों को अधिक पौष्टिक व अतिस्निग्ध पदार्थो का कम प्रयोग करना चाहिये। पित्तज प्रकृति को अधिक उष्ण पदार्थो का प्रयोग नहीं करना चाहिये जिससे इस ऋतु का कुप्रभाव न पड़ें।

सर्दियों में पुष्टिकारक व्यंजन

वैद्य बी.पी. जैन, लखनऊ

इस अंक में लेखक ने कुछ ऐसे व्यंजनों की जानकारी दी है जिनका प्रचलन अब कम होता जा रहा है, पर स्वास्थ्य परम्पराओं में उनके महत्व को देखते हुए उनके गुण व निर्माण विधि का यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

गोंद के लड्डू

गोंद : यह कई प्रकार के पेड़ों से प्राप्त होता है जैसे–बबूल, सहिजन आदि। लड्डू बनाने के लिए बबूल का गोंद ही प्रयोग में आता है। यह बबूल के पेड़ से निकलता है तथा बहुत ताकतवर है। अतः बच्चा पैदा हो जाने के बाद जच्चा में शक्ति लाने के लिए यह अब भी घर–घर में बनाये जाते हैं। आजकल मँहगाई के कारण इसका चलन कम होता जा रहा है अन्यथा पहले घर में बच्चा पैदा होने के बाद काफी मात्रा में लड्डू व पँजीरी बनायी जाती थी तथा नाते–रिश्तेदारों में भी बाँटी जाती थी।

लड्डू बनाने की विधि : साफ सफेद रंग का चमकदार गोंद लें। इसमें लकड़ी का अंश नहीं होना चाहिए। गोंद के महीन टुकड़े करके घी में भूना जाता है साथ में बादाम गिरी, काजू को भी घी में भून कर इमामदस्ते में कूट लिया जाता है तथा आटे को घी में भूनकर उसमें भुना गोंद व मेवा मिलाकर चीनी की चाशनी में डालकर लड्डू बनाये जाते हैं।

जच्चाओं के लिए लड्डू बनाने के लिए उसमें पिसी सोंठ का चूर्ण भी डाला जाता है जिससे यह लड्डू आसानी से हजम हो जाते हैं तथा इससे स्त्रियों को अधिक ताकत मिलती है।

तिल की मिठाइयां

तिल : दो प्रकार का होता है, सफेद तथा काला। इसमें सफेद ही अधिकतर मिठाइयां बनाने के काम में आता है। तिल की फसल दीवाली के आस–पास अक्टूबर में तैयार होती है तथा इसकी उत्तर प्रदेश, मध्य–प्रदेश तथा गुजरात में अधिक खेती की जाती है। तिल का तेल मध्य–प्रदेश में काफी मात्रा में खाने के काम आता है। तिल से लगभग 40 प्रतिशत तेल प्राप्त होता है तथा इसकी खली जानवरों को खिलाने के काम में लाते हैं। इससे निम्न मिष्ठान्न बनाये जाते हैं–

तिल के लड्डू : मिष्ठान बनाने के लिए धुला हुआ तिल ही प्रयोग में लाते हैं इसके लड्डू गुड़ अथवा चीनी से बनाये जाते हैं। बनाने के लिए चीनी अथवा गुड़ की चाशनी बनाई जाती है तथा उसमें भुना हुआ तिल डालकर चला कर ठण्डा कर लड्डू बना लिए जाते हैं। यह खाने में स्वादिष्ट तथा शक्तिवर्द्धक होते हैं।

तिल बुग्गा : इसमें भुने तिल में भुने खोये की चाशनी द्वारा पँजीरी जमा दी जाती है तथा उसे बर्फी की शक्ल में काट लेते हैं। कहीं–कहीं इसमें बादाम गिरी व काजू भी डालते हैं। इससे इसका स्वाद बढ़ जाता है।

अंदरसे : इसको बनाने के लिए चावल के आटे में पिसी चीनी मिलाकर गूँथ लिया जाता है तथा छोटी–छोटी गोलियाँ बनाकर घी में तला जाता है। गर्म–गर्म उतारकर तिल के साथ चलाने से उसकी बाहरी सतह पर तिल चिपक जाते हैं। यह काफी स्वादिष्ट होते हैं।

गजक : इसको बनाने के लिए चीनी अथवा गुड़ की चाशनी बनाई जाती है इसमें तिल मिलाकर पत्थर पर चिकनाई लगा कर इसे लकड़ी के बड़े–बड़े हथौड़ों से कूटा जाता है। जितनी ज्यादा कुटाई होती है गजक उतनी ही बढ़िया तथा खस्ता बनती है। यह खाने में बहुत स्वादिष्ट होती है।

रेवड़ी : इसमें चीनी व गुड़ की चाशनी बनाई जाती है तथा उसके छोटे–छोटे टुकड़े कर चीनी के साथ चलाया जाता है प्रत्येक टुकड़ों पर तिल चिपक जाते हैं। अलग–अलग स्थानों पर इनके साइज़ अलग–अलग होते हैं कहीं–कहीं 5 से.मी. व्यास के लोटे से बेल कर बनाई जाती है तथा कहीं–कहीं चने से भी छोटी होती हैं, कहीं–कहीं 10 ग्राम भर की 1–1 रेवड़ी होती है। कहीं–कहीं पर इनको बनाने में गर्म मसाले जैसे– जायफल, जावित्री, तथा लौंग की बुकनी भी मिलाई जाती है जिससे इनका स्वाद एकदम अलग हो जाता है तथा खाने में बहुत स्वादिष्ट हो जाती हैं।

चिकनाई की अति से मोटापा

मोटापा आधुनिक युग का अभिशाप है। पौष्टिक आहार की अधिकता और आराम की अति के कारण पिछली पीढ़ियों की अपेक्षा, जो कि परिश्रमी और प्रकृति के निकटतर थीं, आज की पीढ़ी मोटी होती जा रही है। तर माल और परिश्रम के अभाव से अस्वस्थ मोटापा उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में शौकीन लोग डायटिंग करने लग जाते हैं जो कभी–कभी लाभ के स्थान पर नुकसान कर बैठता है, क्योंकि कुछ दिनों तक आधा पेट खाने के बाद संयम छूट जाता है और अधिक खाने का दौर फिर शुरु हो जाता है।

बचपन से ही चिकनाई का सेवन कम करना बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास में बाधक और उसके भावी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। आधुनिक युग के अत्यंत घातक हृदय रोग से सुरक्षा की दृष्टि से इसरो बड़े बच्चों और वयस्कों को ही संतृप्त वसा का सेवन कम करने और उसके स्थान पर असंतृप्त वसा लेने का परामर्श देना चाहिए।

फिर भी कुछ चिकित्सकों और वैज्ञानिकों का विचार है कि हमें चिकनाई कम लेने का अभ्यास, बचपन में जब हमारी आदतें जड़ पकड़ रही होती हैं, हो जाय तो बेहतर है।

लगभग नब्बे फीसदी धनी नगरवासी मोटे हैं तो इसका कारण यह है कि वे वेफर्स, पेस्ट्री, चाकलेट, आइसक्रीम और समोसे जैसे चीजें खाते ही रहते हैं। मेहनतकश लोग ही छरहरे और तगड़े पाये जाते हैं।

ऐसे खाद्यों को सामने देखकर खाये बिना रहा नहीं जाता। एक बार वेफर्स और दालमोठ खा ली जाय तो फिर हाथ तश्तरी के खाली होने तक रुकता ही नहीं। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि केवल एक समोसा खा लेने से व्यायामशाला में एक घंटे की वर्जिश करके गवाई हुई सारी ऊर्जा वापस मिल जाती है।

प्राकृतिक खाद्य इतने आकर्षक कभी नहीं होते। यदि आपके सामने सेबों का ढेर रखा हो तो आप उसमें से एक ही सेब खाकर तृप्त हो जायेंगे और दूसरा नहीं उठायेंगे।

हम जहाँ भी जाते हैं लोग हमें खिलाने पर जोर देते हैं और जो खाद्य वे पेश करते हैं वह मोटापा पैदा करने वाला होता है। कोई भी मेजबान खीरा, ककडी, मूली, गाजर, अमरूद या बिना शक्कर का नींबू पानी पेश नहीं करता। वस्तुतः डायटिंग करने वाला व्यक्ति भारत में मोटे मेजबानों की ईर्ष्या का शिकार हो जाता है।

हमारे खाने में प्रयुक्त चिकनाई ही हमें मोटा करती है। पहले चावल और आलू की गणना मोटापा बढ़ाने वाले पदार्थों में की जाती थी जबकि ये दोनों ही खाद्य लगभग वसाहीन हैं। इन दोनों में कार्बोहाइड्रेटों की अधिकता होती है जो हमारे दैनिक कार्यकलापों में ईंधन की तरह जलकर समाप्त हो जाते हैं। जबकि वसा से प्राप्त ऊर्जा शारीरिक वसा के रूप में एकत्र होती रहती है।

वसा शारीरिक ऊर्जा का अत्यंत घनी स्रोत है। प्रति ग्राम वसा से नौ कैलोरी ऊर्जा मिल जाती है। जबकि प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट के एक ग्राम से मात्र चार कैलोरी ऊर्जा मिलती है। अतः तर खाद्य में ऊर्जा की अति होती है। ऐसे खाद्य मधुमेह, हृदय और अन्य रोगों का खतरा बढ़ा देते हैं।

संतृप्त और असंतृप्त वसीय अम्लों के संयोग को वसा कहते हैं। संतृप्त वसीय अम्ल के उदाहरण हैं मक्खन, मलाई, मॉस तथा नारियल और ताड के तेल।

मक्का, कुसुम और तिल तेल असंतृप्त तेल हैं। ये तेल कमरे के सामान्य ताप पर तरल होते हैं। मछली और वनस्पतियों से हमें असंतृप्त वसायें प्राप्त होती हैं।

थोडी बहुत चिकनाई हमारे स्वस्थ बने रहने के लिए आवश्यक है। इनसे हमें अनिवार्य वसाम्लों की प्राप्ति होती है। लेकिन इसके लिए हमें संतृप्त वसाम्लों को लेना जरूरी नहीं है क्योंकि ये हमारे शरीर में जरुरत के मुताबिक बन जाते हैं। विटामिन ए,डी, ई और के वसा में घुलकर शरीर में जाकर हमारी त्वचा और बालों को स्वस्थ और सुंदर बनाये रखते हैं।

मूंगफली और रेपसीड जैसे तेल, रक्त में कोलेस्टेराल के स्तर और धमनी के लिए हानिकारक एल डी एल कोलेस्टेराल को कम करने के साथ ही स्वास्थ्यवर्धक एच डी एल कोलेस्टेराल के स्तर को बनाये रखने में सहायक होते हैं। खाना बनाने के लिए ये तेल श्रेष्ठ हैं। ये अत्यंत गरम होने पर भी हमारी कोशिकाओं के लिए घातक मुक्त मूलकों (फ्री रेडिकल) का निर्माण कम करते हैं।

वसा इतनी ही लें कि शरीर को आवश्यक कुल ऊर्जा के तीस प्रतिशत से कम ऊर्जा उससे प्राप्त हो सके। अर्थात् यदि 2000 कैलोरी ऊर्जा लेनी हो तो आप 60 ग्राम के लगभग वसा ले सकते हैं। हमारी आवश्यक ऊर्जा का 10 प्रतिशत से कम कुसुम के तेल, सोयाबीन तेल या सूरजमुखी तेल जैसी बहु असंतृप्त वसाओं से प्राप्त होना चाहिए।

प्रसंस्कृत खाद्यों में प्रयुक्त हाइड्रोजिनेटेड तेल को विशेष रुपसे सीमित रखना चाहिए। ऐसी वसाओं में मूंगफली का तेल और रेपसीड तेल उत्तम है। सोच–समझ कर खाये। दो बार ठूंस कर खाने की अपेक्षा चार–पांच बार थोडा–थोड़ा खाना अच्छा है। अतिरिक्त वसा का सेवन कम करें। मलाई रहित दूध और वसाहीन मांस लें। तली चीजें कम खायें। कार्बोहाइड्रेट का सेवन और व्यायाम बढ़ायें जिससे मोटापा न बढ़े और आप स्वस्थ रह सकें।

पिछले अंक से जारी

मोटापा घटाने के उपाय

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे

जीवन यात्रा सुगम बनायें
यातायात नियमों को अपनायें।

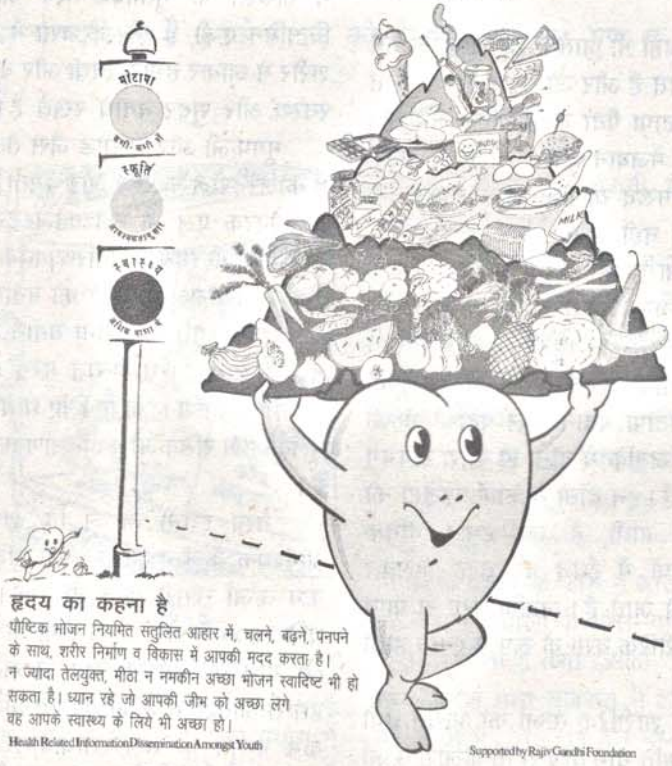

हृदय का कहना है
पौष्टिक भोजन नियमित सतुलित आहार में, चलने, बढ़ने, पनपने के साथ, शरीर निर्माण व विकास में आपकी मदद करता है। न ज्यादा तेलयुक्त, मीठा न नमकीन अच्छा भोजन स्वादिष्ट भी हो सकता है। ध्यान रहे जो आपकी जीभ को अच्छा लगे वह आपके स्वास्थ्य के लिये भी अच्छा हो।
Health Related Information Dissemination Amongst Youth

Supported by Rajiv Gandhi Foundation

मोटापा घटाने के लिए यह आवश्यक है कि 'निदान परिवर्जन' अर्थात् मेदवृद्धि के कारणों को समाप्त किया जाय। मेदवृद्धि (मोटापा बढ़ाने) के कारण पिछले अंक में बताये गये हैं। अतः इन कारणों को यदि ध्यानपूर्वक वर्जित किया जाय तो मोटापे पर निश्चय ही अंकुश लग जायगा। कुछ उपाय इस प्रकार हैं :

- मोटापे का मुख्य कारण चर्बी का बढ़ना है। अतः वसा अर्थात् चिकनाई की मात्रा आहार में कम करना नितान्त आवश्यक है। सामान्य महिलाएं एक दिन में आहार में कुल वसा की मात्रा 30 ग्राम या इससे कम और पुरुष 40 ग्राम या इससे कम रखें।
- आहार में वसा के स्थान पर कार्बोहाइड्रेट लें जो शीघ्र पच जाते हैं और भरपूर ऊर्जा देते हैं।
- मोटापे के कारण किसी प्रकार का आहार पूर्णतया वर्ज्य करने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि मिठाइयां या इस प्रकार के पदार्थ अत्यन्त कम मात्रा में लिये जाएं। मीठे, शीतगुण वाले और चर्बी पैदा करने वाले पदार्थ अत्यन्त कम मात्रा में लिये जाएं। प्रारंभ में इनका त्याग शीघ्र लाभ देगा।
- भोजन हमेशा धीमी गति से अच्छी तरह चबाकर करें। इससे भोजन का समय बढ़ जाता है और भोजन की कम मात्रा से भी संतोष हो जाता है। अधिक चबाने से भोजन पचाने की क्रिया मुंह में ही भलीभांति शुरू हो जाती है।
- भोजन नियमित रूप से करें। कभी–कभी उपवास कर लेना भी ठीक है परन्तु उपवास के बाद अधिक मात्रा में भोजन कभी न करें।
- आहार को स्वादिष्ट बनाने के लिए घी और तेल का प्रयोग किया जाता है, इसके स्थान पर विभिन्न मसालों का प्रयोग कर आहार में स्वाद और सुगंध बढ़ायें।
- असमय भूख लगने पर कभी भी ठोस आहार न लें। ऐसे समय तरल पदार्थ जैसे सूप या फलों के रस से काम चला लें।
- आज कल फास्ट फूड का बहुत अधिक प्रचलन है। इनमें वसा की मात्रा अधिक होती है, अतः इनसे बचें। डबलरोटी का प्रयोग खीरा, टमाटर के साथ करें और पनीर, मक्खन, चीज आदि का प्रयोग न करें।
- दूध को मलाई निकालने के बाद ही लें। सपरेटा दूध अच्छा रहेगा।
- आलू और शकरकंद जैसे पदार्थों का प्रयोग कम करें। हरी सब्जियां अधिक मात्रा में लें। सब्जियों को घी–तेल में बनाने के बजाय भाप में पकायें। नानस्टिक कढ़ाई का प्रयोग करें जिनमें बहुत कम चिकनाई की आवश्यकता होती है।
- सलाद का प्रयोग कच्चे रूप में ही करें।
- मांसाहारियों को तली हुई मछली के स्थान पर भुनी हुई मछली और चर्बी निकालने के बाद ही मांस का प्रयोग करना फायदेमन्द होगा।

- वज़न घटाने के लिए शक्ति को खर्च करना जरूरी है। अतः शारीरिक शक्ति को खर्च करने के लिए व्यायाम, लंबी दूरी तक टहलना और शारीरिक श्रम के काम करना आवश्यक है।
- हर समय कुछ–न–कुछ खाते रहने की आदत पूरी तरह छोड दें। खाने के मामले में मन पर नियंत्रण रखें और जीभ को अपने ऊपर हावी न होने दें।
- भोजन में आहार की मात्रा आधा पेट और पानी की मात्रा चौथाई पेट होनी चाहिए और पेट का एक चौथाई भाग खाली रखना चाहिए।
- मोटापा घटाने के लिए आप अपने परिवार जनों और मित्रों का सहयोग अवश्य प्राप्त करें। प्रायः परिवार अथवा मित्रों के आग्रह पर खाना या मिठाई आदि अधिक खाई जाती है। अतः उनसे सहयोग प्राप्त होने पर ऐसा आग्रह नहीं होगा और आपको अपने आहार पर नियंत्रण रखने में आसानी होगी।
- केला जैसे गरिष्ठ फलों के स्थान पर तरबूज, पपीता जैसे फल मोटापा कम करने के लिए लाभदायक होंगे।
- अंकुरित मूंग, मूंग की दाल, जौ, बाजरा, पुराना चावल, मट्ठा, सूप और सलाद को भी भोजन में स्थान दें।
- दिन में सोना छोड़ दें।

घरेलू औषधियां

- शहद और नींबू का रस या शहद और गुनगुना पानी प्रतिदिन अवश्य लें।
- त्रिफला चूर्ण शहद के साथ प्रतिदिन दो बार लें।
- दशांग गुग्गुल का प्रयोग करें।
- वायविडंग, आंवला और सोंठ का चूर्ण शहद के साथ लें।
- चरक संहिता के अनुसार विडंगादि लौह मोटापा घटाने के लिए उत्तम औषधि है।
- नियमित रूप से तेल से मालिश करना भी मोटापे को दूर करने में सहायक होती है।

कुछ योगासन भी मोटापा घटाने में बहुत कारगर हैं। जो आसान होने के साथ ही संपूर्ण शरीर को व्यायाम देते हैं। सबसे उत्तम सूर्यनमस्कार इसके अलावा धनुरासन, उष्ट्रासन, मयूरासन, सर्वांगासन, हलासन, मत्स्यासन और शीर्षासन करने से शरीर पर नियंत्रण बढ़ता है और मेद छंट जाता है। प्राणायाम भी मेद (मोटापा) कम करने के लिए प्रभावी है। इनके अलावा वज्रासन, एकपादउत्थान आसन, सन्तुलासन, शलभासन आदि भी मेदवृद्धि को रोकने में सहायक हैं। दाहिने नासापुट से श्वास लेते रहने से अग्नि प्रदीप्त होकर लाभ होता है।

यदि थायराइड, एड्रीनल आदि ग्रन्थियों में विकार के कारण मोटापा आता है तो विकार के अन्य उपद्रवों के आधार पर तत्काल चिकित्सीय परामर्श लें।

(समाप्त)

ई–51, महानगर विस्तार, लखनऊ

वसाएँ और रेशे

वसाओं में वसीय अम्ल होता है। जिन वसाओं के वसीय अम्ल में हाइड्रोजन के परमाणु अधिकतम होते हैं उन्हें संतृप्त वसा कहते हैं और जिन वसाओं के वसीय अम्ल में कुछ परमाणु और समा सकते हैं उन्हें असंतृप्त वसाएं कहते हैं।

संतृप्त वसाएं एथिरोस्क्लेरोसिस नामक रोग के उभरने में सहायक होती है जो कि हृदय रोग व मधुमेह उत्पन्न करता है। अतः इनका सेवन कम से कम करना चाहिए। मोटे तौर पर जानवरों से प्राप्त वसाओं में संतृप्त वसा का अंश ज्यादा होता है और पौधों से प्राप्त वसाओं में असंतृप्त वसा अधिक होती है। अपवाद के रूप में नारियल के तेल और ताड़ के तेल में संतृप्त वसाएं अधिक होती हैं।

देशी घी, मक्खन, मलाई, खोया, नारियल का तेल, ताड़ का तेल, मांस, अंडे की ज़र्दी और डालडा से संतृप्त वसा और मूँगफली, मक्के, सोयाबीन, सूरजमुखी और जैतून के तेल से असंतृप्त वसा प्राप्त होती है। अधिकांश तरह की चिकनाई में संतृप्त और असंतृप्त दोनों प्रकार की वसाएँ होती हैं।

मछलियों में एक विशेष प्रकार की वसा होती है जिसमें रक्त से कोलेस्टेराल की मात्रा घटाने की विशेष क्षमता होती है। सालमन और हेरिंग मछलियों में इसकी मात्रा विशेष अधिक होती है।

रेशे : पौधों से प्राप्त वे खाद्य अंश जिन्हें आँतें पचा नहीं पातीं रेशे कहलाते हैं और ये हमें निम्न लाभ पहुँचाते हैं :

ये आंतों द्वारा कार्बोहाइड्रेट को सोखने की रफ्तार को कम करते हैं जिससे खून में शकर (ग्लूकोज) का स्तर तेजी से नहीं बढ़ पाता और व्यक्ति मधुमेह से सुरक्षित रहता है।

ये खून में कोलेस्टेराल की मात्रा की मात्रा को कम करते हैं।

इनसे पेट के भरे होने की एहसास होता है जिससे आदमी कम खाता है और इससे उसका वजन नहीं बढ़ने पाता।

चना, लोबिया, मूँग, कुल्थी, मटर, सोयाबीन, चौलाई, मेथी, पत्ता गोभी, पुदीना, गाजर, घुइयाँ, सेम, करेला, ग्वार की फली, सहजन की फली, कमलककड़ी, कद्दू, सेब, अमरूद, खजूर, नींबू, अनार, तिल, अलसी, मूँगफली के दाने रेशों के प्रमुख स्रोत हैं।

बच्चों का कोलेस्ट्रोल से बचाव

बच्चों में कोलेस्ट्रोल की शिकायत कुछ वर्ष पूर्व बहुत ही कम देखने को मिलती थी, लेकिन इधर यह समस्या बढ़ रही है। सिर्फ अमेरिका में ही आठ से पंद्रह वर्ष आयु वर्ग के बच्चों में कालेस्ट्रोल का स्तर सामान्य से अधिक पाया जाने लगा है, जिससे कम उम्र में दिल के दौरे की संभावना हो सकती है। दिल के दौरे की बढ़ती घटनाओं ने अब दुनिया भर के डाक्टरों का ध्यान इस विषय पर सोचने के लिए बाध्य कर दिया है कि वे बच्चों में कॉलेस्ट्राल का स्तर पता करने के लिए इसकी जांच को विशेष महत्व दें।

कोलेस्ट्रोल एक प्रकार की वसा होती है, जो कि शरीर में प्राकृतिक रूप से बनती है। जब शरीर में इसकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है तब यह घातक हो जाती है। अतिरिक्त वसा रक्त की उन धमनियों में भी जमने लगती है, जो हृदय और मस्तिष्क को रक्त पहुंचाती हैं। लिहाजा धमनियां संकुचित हो जाने की वजह से दिल के दौरे की संभावना बढ़ जाती है। कुछ बच्चों का पारिवारिक इतिहास धमनियों का सख्त पड़ जाने वाले रोग अथीरोस्क्लीरोसिस से जुड़ा होता है। मां–बाप और परिवारिक चिकित्सक को मानक वजन से 20 प्रतिशत या उससे अधिक वजन के बच्चों और धूम्रपान करने वाले बच्चों के प्रति विशेष सतर्क रहना चाहिए। धूम्रपान करने वाले बच्चों में कोलेस्ट्रोल की आशंका अधिक होती है।

भोजन एवं व्यायाम

प्रत्येक बच्चे के वजन पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्हें कम कोलेस्ट्रोल एवं कम वसायुक्त भोजन दिया जाना चाहिए। बच्चों को धूम्रपान नहीं करना चाहिए तथा नियमित व्यायाम करना चाहिए। यदि इनका पालन किया जाये तो अधिकांश बच्चों के कोलेस्ट्रोल की समस्या से मुक्ति पायी जा सकती है।

यदि आप अपने परिवार में कोलेस्ट्रोल स्तर को लेकर चिंतित है तो आपको कम वसा, कम नमक का कोलेस्ट्रोल मुक्त पौष्टिक भोजन तैयार करना चाहिए जो कि परिवार के सभी सदस्यों के लिए हो।

नवजात शिशु एवं छोटे बच्चों को उचित विकास के लिए अधिक वसायुक्त आहार की जरूरत होती है। बाल रोगों की अमेरिकन एकेडमी का मानना है कि दो वर्ष की उम्र से अधिक बच्चों को वसा की 30 से 40 प्रतिशत से अधिक कैलोरी नहीं मिलनी चाहिए। मक्खन की जगह मार्जरीन व मलाईयुक्त दूध की जगह मक्खन निकाला दूध इस्तेमाल करना चाहिए। एक हफ्ते में तीन अंडे से अधिक का सेवन नहीं करना चाहिए। इसके अलावा काम्प्लेक्स कार्बोहाइड्रेट जैसे– सेम, आलू, डबल रोटी आदि का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए।

फास्ट फूड पर नियंत्रण जरूरी

फास्ट फूड में वसा, नमक और कैलोरी बहुत ज्यादा होती है। कभी–कभी बच्चों को बाहर भोजन कराने में कोई नुकसान नहीं है पर घर पर फास्ट फूड लेने की आदत नहीं डालनी चाहिये। भोजन में सोडियम की अधिकता से कुछ लोगों में उच्च रक्तचाप की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसलिए भोजन में नमक का प्रयोग कम करना चाहिए। इसी प्रकार आइसक्रीम भी नुकसानदेह होती है।

व्यायाम जरूरी

व्यायाम से कोलेस्ट्रोल का संतुलन बना रहता है। व्यायाम नियमित रूप से 20 से 30 मिनट तक सप्ताह में तीन–चार बार करने के लिए बच्चों को प्रेरित करना चाहिए। इसमें दौड़ना, साइकिल चलाना, पैदल टहलना, तैराकी और टेनिस खेलना शामिल है।

विटामिन 'ए' की कमी

विटामिन ए की कमी से विकासशील देशों में पांच वर्ष से कम आयु के ढाई से पांच लाख बच्चे प्रतिवर्ष अंधे हो जाते हैं। यूनीसेफ की एक नई रिपोर्ट के मुताबिक इस विटामिन की कमी से बच्चों में नेत्र विकार पैदा होता है जो बढ़ता जाता है जिसकी वजह से ये बच्चे अंधे हो जाते हैं तथा इनमें से दो तिहाई कुछ ही महीनों में मर भी जाते हैं। इन देशों में 1991 में एक करोड़ चालीस लाख बच्चे विटामिन 'ए' की कमी से नेत्र विकार ग्रस्त पाये गये।

भारत में विटामिन 'ए' की कमी से रेगिस्तानी इलाकों, सूखा प्रभावित क्षेत्रों, पर्वतीय क्षेत्रों और पिछड़े इलाके के छोटी उम्र के बच्चों में कई रोग पाये गये हैं। 1975 के मुकाबले इस विटानिन की कमी से अंधता के मामलों में 1990 के आसपास यद्यपि डेढ़ प्रतिशत मामलों में सुधार हुआ है, लेकिन देश के अनेक क्षेत्रों में अभी भी बच्चों में अंधेपन की जटिल समस्या बनी हुई है।

पोषाहार संबंधी भ्रांतियाँ

पोषाहार–विज्ञानियों ने रोग और आहार के परस्परावलंबन के संबंध में जन–चेतना को बढ़ाने में बड़ा योगदान किया है। उनके प्रयासों के कारण अब हम यह जानने लगे हैं कि हमें स्वस्थ जीवन बिताने के लिए कैसे और क्या खाना चाहिए।

लेकिन पोषाहार विज्ञान में एक बहुत बड़ी कमी है। वह यह है कि वह आहार की समग्रता को छोड़ कर उसके रासायनिक अवयवों पर ध्यान देता है। इस प्रकार अवयवों पर ध्यान देकर उसने इस बात को अच्छी तरह जान लिया है कि उसका कौन–सा भाग हमें फायदा पहुंचाता है या नुकसान। लेकिन इस प्रक्रिया में वह कभी–कभी मोटी–मोटी बातें भुला बैठता है।

जस्टस फॉन लीबिग ने जिसने आज से १५० वर्ष पूर्व पोषाहार विज्ञान की नींव रखी थी, आहार के केवल तीन अवयवों की पहचान की थी :

- ऊर्जाप्रद कार्बनयुक्त (कार्बोहाइड्रेट और वसा) आहार जो शरीर में ऊष्मा उत्पन्न करते हैं।
- नाइट्रोजनयुक्त (प्रोटीन) आहार जो पेशियों का निर्माण करते हैं।
- खनिज लवण जिनसे दांत और हड्डियां बनती हैं।

इतनी सीमित जानकारी के रहते, लीबिग की पोषाहार संबंधी कुछ बातें ठीक नहीं थीं। लेकिन उसकी कुछ गलत बातें आज भी व्यापक तौर पर ठीक मानी जाती हैं यह चिंता की बात है।

लीबिग का कहना था कि रासायनिक उर्वरकों से उगायी सब्जियां कंपोस्ट खाद से उगायी गयी सब्जियों के समान ही लाभदायी हैं। आज इस बात का पक्का प्रमाण उपलब्ध है कि जैव खादों से उगायी गयी सब्जियां अधिक स्वास्थ्यकर हैं और रासायनिक उर्वरक मिट्टी के गुणों का क्षरण कर देते हैं। फिर भी लीबिग की १५० साल पहले कही गयी बातों के आधार पर इन प्रमाणों की उपेक्षा कर दी जाती है।

दूसरी बात यह कि लीबिग ने मनुष्य के लिए मांस को सर्वाधिक महत्व का आहार बता कर उसकी गरिमा बढ़ा दी और कहा कि मांस से प्राप्त प्रोटीन, वानस्पतिक प्रोटीन से कहीं बढ़ चढ़ कर है। यह धारणा आज भी प्रचलित है जबकि यह सही नहीं है। पोषाहार की अधिकतर पुस्तकों में मांस को अनिवार्य आहार बताया जाता है और पोषाहार–वैज्ञानिक शाकाहार को प्रायः खतरनाक बताते हैं। दूसरी ओर देखने में यह आता है कि शाकाहारियों का स्वास्थ्य प्रायः मांसहारियों से अच्छा रहता है।

डेयरी उत्पादों को भी अनिवार्य बताया जाता है। फिर भी दुनिया भूमध्यसागरीय क्षेत्र तथा अधिकांश अफ्रीकी ग्रामीण आबादी दूध को हजम करने की क्षमता न होते हुए भी सामान्यतः स्वस्थ रहती है। अमरीकी लोग, जो दूध और डेयरी उत्पादों का अत्यधिक सेवन करते हैं, आज संसार में सबसे अधिक अस्वस्थ लोग हैं।

पोषाहार विज्ञान में मांस और डेयरी उत्पादों पर जोर उसके पाश्चात्य झुकाव को इंगित करता है। इसी झुकाव के तहत यह गलत धारणा फैलायी गयी है कि मांस और प्रोटीनों का सेवन अधिक से अधिक करना चाहिए।

फॉन लीबिग के एक छात्र कार्ल फान वाइट ने इस बात का सूक्ष्म अध्ययन किया कि मनुष्यों को कितने प्रोटीन की आवश्यकता है। अपने हृष्ट–पुष्ट और बहुभोजी प्रयोगशाला सहायक का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसकी धारणा बनी कि हल्का काम करनेवाले औसत व्यक्ति को प्रतिदिन १२५ ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता है जो लगभग ७६० ग्राम मांस से प्राप्त हो सकती है।

आज अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि औसतन आदमी को ३० ग्राम प्रोटीन भी आवश्यकता से ज्यादा साबित हो सकता है। यह भी ज्ञात हुआ है कि कच्चे वानस्पतिक पदार्थ (गिरीदार फल) के रूप में प्रोटीन लेनेवालों के लिए १५ ग्राम प्रोटीन लेना यथेष्ट रहता है।

पाठकों के अनुभव

'जीवनीय' का प्रकाशन लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति के आंदोलन के मुखपत्र के रूप में प्रारंभ किया गया था। 'जीवनीय' देश भर में फैली स्वास्थ्य की स्थानीय परम्पराओं के संकलन, मूल्यांकन और संवर्धन के लिये प्रयासरत है। इस दिशा में हमें अपने पाठकों के सहयोग की बहुत आवश्यकता है। यदि आपके क्षेत्र में परंपरा से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्वास्थ्य रक्षा और सामान्य रोगों की कोई चिकित्सा प्रचलित है तो हमें अवश्य लिखें। यदि आपको किसी रोग की चिकित्सा की परंपरागत विधि का अनुभव है तो हम उसे 'पाठकों के अनुभव' स्तम्भ में प्रकाशित भी कर सकते हैं।

अंग्रेजी शासन में आयुर्वेद

पिछले कई अंकों से इस विषय पर अन्य लेख प्राप्त होने के कारण हम पं. काशीनाथ गोरे जी की यह लेखमाला नहीं प्रकाशित कर सके, इसके लिये हमें खेद है। हम इस लेखमाला की एक किश्त यहां दे रहे हैं। इस लेखमाला का अन्तिम भाग आगामी अंक में प्रकाशित होगा

संपादक

आयुर्वेद में मध्यकालीन ग्रन्थ लघुत्रयी (माधव निदान, शड्गधर संहिता और भावप्रकाश) अत्यन्त महत्वपूर्ण रहीं। इसमें आयुर्वेद के सभी अंगों का सरल और सविस्तार विवेचन हुआ और व्यावहारिक दृष्टि से ये ग्रन्थ वैद्य समाज में अत्यन्त लोकप्रिय और पथप्रदर्शक रहे। इस समय तक अंग्रेजों का प्रभुत्व भारत में स्थापित होने लगा था और धीरे–धीरे समस्त भारत उनसे पदाक्रान्त होने की स्थिति में आ गया था। भारत की राजनैतिक स्थिति का प्रभाव समाज के प्रत्येक अंग को झकझोर रहा था। आयुर्वेद के विकसित वटवृक्ष को भी इस आंधी का सामना करना पड़ा। फिर भी आयुर्वेदज्ञों ने आयुर्वेद के ज्ञान को विकसित करने के अपने प्रयास नहीं छोड़े।

भावप्रकाश के बाद 19वीं शताब्दी के अन्त में कविराज विनोद लाल सेनगुप्त ने आयुर्वेद विज्ञान की रचना की। इस रचना में उस समय तक प्रचलित आधुनिक चिकित्सा पद्धति के ज्ञान को भी समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है। आयुर्वेद विज्ञान को चार स्थानों में विभाजित किया गया है। ये हैं सूत्रस्थान, शारीर स्थान, द्रव्य स्थान और निदान चिकित्सा स्थान। द्रव्य स्थान ग्रन्थकार की नवीन प्रकल्पना थी। जिसमें उस समय तक प्रचलन में आई हुई विदेशी औषधियों यथा इसबगोल, सनाय, चाय आदि का भी वर्णन किया गया है। ग्रंथ में चेचक का भी विवरण दिया गया है।

इसके अलावा संपूर्ण आयुर्वेद को समाविष्ट करने वाले अन्य ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ। विष्णु वासुदेव गोडबोले का निघण्टुरत्नाकर, दत्तराम चौबे कृत बृहत् निघण्टु रत्नाकर, हरिदास वैद्य का चिकित्सा चन्द्रोदय, बंगला में द्रेवेन्द्रनाथ सेनगुप्त और उपेन्द्रनाथ सेनगुप्त रचित आयुर्वेद संग्रह आदि भी लोकप्रिय हुए। उन्नीसवीं शती में गंगाधर राय ने चरक संहिता पर जल्पकल्पतरु व्याख्या लिखी जो विद्वत्तापूर्ण है और उसमें आयुर्वेद के दार्शनिक पक्ष की गहन मीमांसा की गई हैं। गंगाधर राय ने आयुर्वेद के विभिन्न विषयों पर भी कई अन्य रचनाएं की। गंगाधर राय अपने समय के प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ थे और इनकी शिष्य–प्रशिष्य परम्परा भारत भर में फैली है। इनके कई शिष्य अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। उनमें से श्री हाराण चन्द्र चक्रवर्ती ने सुश्रुत संहिता पर सुश्रुतार्थ संदीपन भाष्य लिखा। योगीन्द्र नाथ सेन महामहोपाध्याय द्वारका नाथ सेन के पुत्र थे। योगीन्द्रनाथ ने चरकोपस्कार नामक सुबोध व्याख्या लिखी। ज्योतिष चन्द्र सरस्वती की चरक प्रदीपिका टीका तथा जयदेव विद्यालंकार की हिन्दी में चरक संहिता पर टीका लिखी गई। इसी परंपरा में अत्रिदेव विद्यालंकार, राम प्रसाद शर्मा, भास्कर गोविन्द घाणेकर, दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी और लाल चन्द्र वैद्य ने भी टीका ग्रन्थ लिखे हैं।

आधुनिक काल में अन्य कई ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ, जिन में कृष्ण राम भट्ट की भैषज्यमणि मात्रा, वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य का सिद्ध योग संग्रह, शलिग्राम वैश्य का शालिग्राम निघण्टु, शंकर दाजी शास्त्री पदे का वनौषधि गुणादर्श, गंगाधर शास्त्री गुणे का आयुर्वेदीय औषधिगुण धर्मशास्त्र, राममिश्र और श्यामसुन्दराचार्य वैश्य का रसायनसार आदि प्रसिद्ध है। इसके अलावा

प. काशीनाथ गोपाल गोरे

भी बहुत अधिक संख्या में आयुर्वेद संबंधी ग्रंथों का प्रणयन हुआ है।

आधुनिक काल में आयुर्वेद के संबंध में पत्रिकाओं का प्रकाशन भी प्रारंभ हुआ। हिन्दी में सर्वप्रथम मासिकपत्र आरोग्य सुधानिधि श्री नारायण शर्मा राजवैद्य द्वारा कलकत्ता से ई.स. 1901 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद अनेक पत्रिकाएं प्रकाशित हुई जिन में शंकर दाजी शास्त्री का सद्वैद्य कौस्तुभ, जगन्नाथ प्रसाद शुक्ला की सुधानिधि, धन्वन्तरि, प्राणाचार्य, अनुभूतयोग माला, आयुर्वेद, स्वास्थ्य, सचित्र आयुर्वेद, आयुर्वेद विकास, वैद्य सम्मेलन पत्रिका, आयुर्वेद सन्देश, नागार्जुन प्रमुख है। इसके साथ ही विभिन्न राज्यों के आयुर्वेद महाविद्यालयों से वार्षिक पत्रिकाएं भी निकलती है। आज भी पत्रिकाओं की परम्परा अक्षुण्ण है। भारत की लगभग सभी भाषाओं में आयुर्वेद विषयक पत्रिकाओं का प्रकाशन आज भी हो रहा और उनके द्वारा आयुर्वेद में सिद्धान्तों पर ऊहापोह के साथ, नये अनुभूत प्रयोगों की भी जानकारी दी जाती है। ये पत्रिकाएं वास्तव में आयुर्वेद को

आज भी लोकप्रिय बनाये हुए हैं।

आयुर्वेद का अवतरण प्राणिमात्र के दीर्घायुष्य, स्वास्थ्य रक्षण और रोग निवारण के लिए हुआ था, अतः प्रारंभ से ही वैद्यक कार्य सेवाभाव के अन्तर्गत रहा। वैद्यक व्यवसाय प्रारंभ करने हेतु राजाश्रय आवश्यक होता था। चरक संहिता में प्राणाभिसर (उत्तम वैद्य) और रोगाभिसर (नीम हकीम) दोनों का उल्लेख है। प्राणाभिसर वैद्य आदरणीय होते थे। वैद्य के लिए दक्षिणा भी विहित थी। वैद्यक व्यवसाय सामान्यतया कुल–परम्परागत रूप से चलता था। वैद्य का पुत्र पिता से शिक्षा ग्रहण कर वैद्य होता था। परन्तु बाद में गुरुकुल भी प्रतिष्ठित हुए जिनमें विभिन्न स्थानों के शिष्य एक ही गुरू से शिक्षा ग्रहण करते थे। यही दोनों आज भी विद्यमान हैं परन्तु अब परम्परागत ज्ञान की सीढ़ियां टूटती जा रही हैं। अब ऐसे बहुत कम वैद्य हैं जिनके पीछे कुल परंपरा है। वर्तमान शिक्षाप्रणाली के कारण यह परिवर्तन आ गया है। इस परिवर्तन के कारण कुल परम्परागत ज्ञान और क्रिया की जो गहनता और उपयोगिता थी वह लुप्त होती जा रही है।

भारत में मुसलमानों के आक्रमण और उनके राज्य की स्थापना के बाद यूनानी चिकित्सा को मान्यता मिली परन्तु आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति भी भारतीय हिन्दू राजाओं और जनसामान्य के प्रश्रय में चलती रही। आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियों में मूलभूत समानता होने के कारण दोनों पद्धतियों में आदान–प्रदान का सिलसिला चला, जिससे आयुर्वेद में नई औषधियां और नये प्रयोग समाविष्ट हुए। अंग्रेजों का राज्य स्थापित होने पर एलोपैथी को राज्याश्रय मिला और एलोपैथी के अस्पताल सर्वत्र खुलने लगे। यद्यपि भारतीय राज्यों में अभी भी आयुर्वेद को संरक्षण प्राप्त था और जनसाधारण में भी आयुर्वेद की चिकित्सा प्रचलित रही तथापि एलोपैथी के प्रचार का झटका असहय था। धीरे–धीरे आयुर्वेद की लोकप्रियता और उपलब्धता घटने लगी। अस्पतालों के साथ ही एलोपैथी की शिक्षा देने वाले मेडिकल कालेज खुलने लगे और भारत में एलोपैथी की शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ।

सन् 1920 में आल इण्डिया कांग्रेस ने अपने नागपुर अधिवेशन में प्रस्ताव पारित किया कि भारत में प्रचलित देशी चिकित्सा पद्धतियों को विकसित किया जाय। परिणामस्वरूप विभिन्न प्रान्तों में सरकारी कमेटियां बनाई गई और उन्होंने प्रचलित देशी चिकित्सा पद्धतियों की उन्नति और व्यावसायिक नियंत्रण के लिए सरकारों से सिफारिशें की जिनमें देशी चिकित्सा पद्धतियों की शिक्षा हेतु कालेज और स्वास्थ्य सेवा हेतु औषधालय और अस्पताल खोलने के सुझाव थे। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश, बिहार, असम, आन्ध्र, बम्बई, केरल, मद्रास, पंजाब, राजस्थान, बंगाल और दिल्ली आदि राज्यों में भारतीय चिकित्सा बोर्डो की स्थापना हुई और कई राज्यों में आयुर्वेद के निदेशालय भी बनाये गये। अब एक केन्द्रीय बोर्ड भी स्थापित हो चुका है।

भारत में 19वीं शदी में राष्ट्रीयता की लहर ने आयुर्वेद को भी आन्दोलित किया। भारत के समस्त वैद्यों को एक मंच पर लाकर आयुर्वेद के पुनरुत्थान के लिए प्रयास करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसमें अग्रणी थे बम्बई के वैद्य शंकर दाजी शास्त्री पदे, जिन्होंने सन् 1907 में निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन की स्थापना की और नासिक में प्रथम अधिवेशन किया। वैद्य पदे के स्वर्गवास के बाद पं. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ला ने आजीवन प्रयासरत रहकर इस संगठन को देशव्यापी बनाया और सैद्धान्तिक विचार–विमर्श, विवेचन और आयुर्वेद के पुनरूत्थान का मार्ग प्रशस्त किया। तत्पश्चात् पं. शिवशर्मा ने इसमें सक्रिय योगदान दिया। परन्तु भविष्य में शुद्ध आयुर्वेद का पक्षधर होने के कारण और देश में मिश्र शिक्षा पद्धति आ जाने के कारण इसकी व्यापकता कम हो गई। आज भी राज्यों में वैद्य सम्मेलन की शाखाएं आयुर्वेद के विकास में कार्यरत हैं।

आयुर्वेद की शिक्षा पद्धति में आधुनिक काल में बार–बार उथल–पुथल होती रही। प्रारंभ से ही आयुर्वेद की शिक्षा गुरु परम्परा से चलती रही थी। वैद्य सम्मेलन की स्थापना के बाद उसके अन्तर्गत सन् 1908 में आयुर्वेद विद्यापीठ की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य आयुर्वेद की शिक्षा को देशव्यापी स्तर पर संगठित और व्यवस्थित करना था। इस विद्यापीठ ने अखिल भारतीय स्तर पर आयुर्वेद की शिक्षा और परीक्षा का कार्य शुरू किया। उसके बाद 1916 में अहमद नगर में आयुर्वेद कालेज स्थापित हुआ। सन् 1919 में ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, 1922 में गुरूकुल कांगड़ी आयुर्वेद महाविद्यालय, कलकत्ता में 1916 में यामिनी भूषण अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय और श्यामादास वैद्य शास्त्रपीठ स्थापित हुए। सन् 1921 में दिल्ली में तिब्बिया एवं आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना हुई। इसी प्रकार मद्रास, पुरी, मुज़फ्फरपुर पटना में आयुर्वेद की शिक्षा हेतु व्यवस्था हुई। जयपुर में भी सन् 1865 से ही आयुर्वेद की शिक्षा संस्कृत कालेज में दी जाती थी। धीरे–धीरे वहां स्वतंत्र राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना हो गई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी आयुर्वेद की शिक्षा आरंभ हुई और 1927 में आयुर्वेदिक कालेज प्रारंभ हुआ। वर्ष 1946 में जामनगर में आयुर्वेद कालेज का प्रारंभ हुआ। गोहाटी और पटियाला में भी क्रमशः वर्ष 1948 और 1952 में आयुर्वेदिक कालेज बने। वर्ष 1954 में लखनऊ में राजकीय आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना हुई।

प्रारंभ में तो आयुर्वेद की शिक्षा शुद्ध आयुर्वेद के रूप मे चलती रही। परन्तु वर्ष 1935 के लगभग गणनाथ सेन और कैप्टन श्रीनिवास मूर्ति के समर्थन से मिश्र पद्धति अपनाई गई जिसमें आयुर्वेद के साथ ही आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया।

शेष पृष्ठ 20 पर

मोटापा कम करने व लंबाई बढ़ाने वाला ताड़ासन

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

ताड़ासन नाम से ही स्पष्ट है कि इसकी स्थिति ताड़ के पेड़ के समान है। इस आसन से मेरुदण्ड में खिंचाव पड़ता है। इसको करने की विधि निम्नानुसार है:

आराम से जमीन पर सीधे खड़े हो जाइये। दोनों पैरों की एड़ियां, पंजे व घुटने पास-पास रहें। पैरों के पंजों को अभ्यास के प्रारंभ में 45° के कोण में फैलाकर रखने से आसन करने में सुविधा होती है बाद में अभ्यास हो जाने पर पंजों को सटाकर रखें। हाथ अगल-बगल रखें और हाथ के पंजों की उंगलियां पास-पास सटाकर उन्हें जांघों के पास सीधे लटकाकर रखें। सिर, गर्दन, पीठ और पैर एक सीध में रखने चाहिए। प्रारंभ में आप दीवार के सहारे पीठ लगाकर खड़े हो जायें। सिर का पिछला भाग, पीठ, कूल्हे और एड़ियां दीवार से लगाने पर शरीर सीधा रहेगा।

इस प्रकार सारे शरीर को एक सीध में रखकर खड़े होने के बाद दोनों हाथों को सीधे रखते हुए अर्थात् कुहनी या कलाई पर बिना मोड़े हथेली जमीन की ओर रखते हुए धीरे-धीरे ऊपर उठायें ताकि दोनों हाथ कंधों की सीध में सामने फैले रहें। इस स्थिति में धड़ और हाथ नब्बे डिग्री का कोण बनायेंगे। अब धीरे-धीरे हाथों को बिना मोड़े ऊपर उठायें साथ ही एड़ियां भी ऊपर उठायें। हाथों को आसमान की ओर ठीक ऊपर ले जाकर स्थिर करें और पैरों के पंजों के बल खड़े रहें। शरीर को बिलकुल एक सीध में रखें। हथेलियां सामने की ओर और भुजाएं कानों के समीप दोनों ओर रखें। दोनों हथेलियों के बीच अपने वक्षस्थल के जितना अन्तर रखना चाहिए। एड़ियों को आपस में सटाकर रखें ओर उन्हें जितना भी संभव हो ऊपर उठायें। चूंकि शरीर का सारा बोझ इस स्थिति में पंजों पर आ जायगा अतः सीधे रहने के लिए शरीर का सन्तुलन बनाये रखना पड़ेगा। इस स्थिति में सारे शरीर को ऊपर की ओर खिंचाव दें।

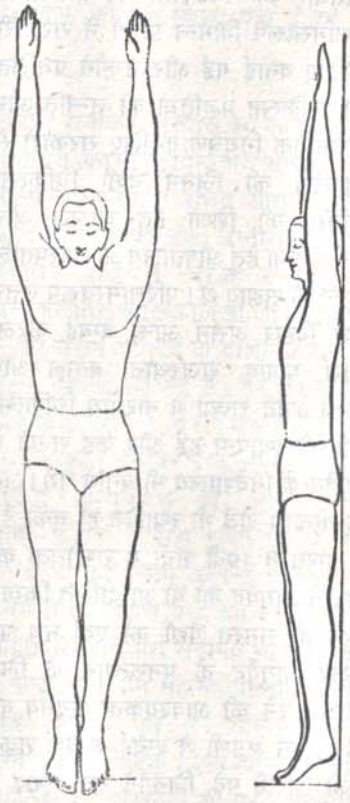

दृष्टि ठीक सामने किसी बिन्दु पर केन्द्रित कर स्थिर रखें। आसन करते समय सांस सामान्य रूप से लें। आसन की अन्तिम स्थिति में सांस रुक सी जाती है अतः अन्तिम स्थिति के पूर्व ही फेफड़ों में श्वास से हवा भर लें तो आसानी रहेगी। अन्तिम स्थिति में भी श्वास प्रक्रिया धीमी गति से चालू रखने से उस स्थिति में अधिक समय तक स्थिर रहा जा सकता है। यह अभ्यास से साध्य हो जायगा।

एक बार अन्तिम स्थिति प्राप्त हो जाने और कुछ क्षण उसमें स्थिर रहने के बाद धीरे-धीरे हाथों कंधों की सीध में सामने की ओर लायें और साथ ही एड़ियां धीरे-धीरे नीचे लाकर जमीन पर रखें। तब हाथ धीरे-धीरे नीचे लाकर अगल-बगल कर लें हाथों के तलुवे जांघ की ओर रखें। इस आसन को एक से अधिक बार कर सकते हैं।

दूसरी विधि

ऊपर दी गई विधि के अनुसार सारे शरीर को एक सीध में रखकर सीधे खड़े रहें। दोनों हाथ शरीर के अगल-बगल रखें। पहले एक हाथ को धीरे-धीरे उठाकर कंधे की सीध में बाई या दाहिनी ओर फैलायें। फिर धीरे-धीरे हाथ को ऊपर ले जायें। ऊपर ले जाने पर हाथ का तलुवा सामने की ओर और एड़ियां जमीन से उठी रहें। तब इस हाथ को धीरे-धीरे नीचे लाकर दूसरे हाथ से वैसी ही क्रिया करें। इसके बाद दोनों हाथों को एक साथ कंधों की सीध में ले जायें और हाथों को और एड़ियों को ऊपर उठाकर आसन की अन्तिम स्थिति बनायें ।

पैरों को पास-पास रखकर या कुछ अन्तर पर रखकर भी ताड़ासन किया जा सकता है। इस आसन में विशेष ध्यान सारे शरीर को एक सीध में रखने पर देना चाहिए। इस आसन की अन्तिम स्थिति के दौरान ठुड्डी को आगे की ओर कंठमूल में और बाद में कंधों पर लगाने का प्रयत्न करने से कंठ प्रदेश का भी व्यायाम हो जाता है।

यदि किसी व्यक्ति को खड़े होने में कठिनाई हो तो इस आसन को कुर्सी या जमीन पर बैठकर हाथों को ऊपर ले जाकर ऊपर की ओर खिंचाव देकर किया जा सकता है। इस आसन को सीधे लेटकर भी कर सकते हैं। सीधे लेटकर हाथों को सिर के ऊपर सीधे फैलाकर शरीर को सिर की ओर खिंचाव देना चाहिए।

यह आसन बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी कर सकते हैं। इस आसन से आलस्य

शेष पृष्ठ 34 पर

मालिश या वाह्य स्नेहन

वैद्य र. म. नानल, मुंबई

मालिश बुढ़ापे मे बहुत लाभदायक है

मालिश वाह्य स्नेहन है। अभ्यंग में मालिश, लेप और उबटन का समावेश है। अभ्यंग के लिए विविध तेलों का उपयोग करें। घी का मालिश के लिए उपयोग नहीं करते क्योंकि उससे त्वचा मृदु होती है। तेल के प्रयोग से त्वचा दृढ़ होती है।

वसंत ऋतु में कफ दोष का स्वाभाविक प्रकोप होता है। इसलिए वसंत ऋतु में अभ्यंग का लाभ नहीं होता। वर्षा ऋतु में वात का प्रकोप होता है इसलिए अभ्यंग का अच्छा लाभ मिलता है।

अभ्यंग सदा नहाने से पहले करें। अभ्यंग से वात का शमन होता है, थकान दूर होती है व बुढ़ापा देर से आता है। त्वचा सुकुमार होकर खिल उठती है। शरीर पुष्ट होता है और आयुष्य बढ़ता है।

हेमन्त और शिशिर ऋतु में तिल या सरसों के तेल से मालिश करें। शरद और ग्रीष्म में नारियल या चंदन, बला या लाक्षादि तेल से मालिश करें। सारे शरीर की मालिश करनी चाहिए। यदि यह संभव न हो तो प्रतिदिन सिर, कान, पैरों के तलुए पर अवश्य ही करनी चाहिए।

नमक और मालिश

आयुर्वेद प्रतिदिन मालिश करने की सलाह देता है। मालिश के तेल में नमक मिलाया जाय तो मालिश के लाभ शीघ्र मिलते हैं। नमक सूक्ष्म है इससे तेल को शरीर के सूक्ष्मतम स्रोतसों में ले जाने की क्षमता मिलती है। इसके लिए एक कटोरी तेल में एक चम्मच सेंधा नमक डालें। लगाते वक्त इस मिश्रण को गुनगुना गरम कर लें।

मालिश के लिए निम्नलिखित तेलों को घर पर बना सकते हैं :–

1. माष सैंधव तेल – इसके नित्य प्रयोग से शरीर पुष्ट होता है। धुली उड़द और सेंधा नमक को तिल तेल में गर्म करके इसे बनाया जाता है। कमर और गर्दन के अकड़ने, हाथ–पैर–सिर के कांपने और बदन सूखने पर यह तेल लाभ करता है।

2. मंजिष्ठा एला तेल – मंजीठ और इलायची के काढ़े से तेल तैयार करते हैं (देखें बाक्स)। इसकी मालिश से झाई आदि चर्म रोग नष्ट होते हैं।

3. ब्राह्मी आंवला तेल – इसे लगाने से बाल झड़ना, बालों में खुश्की तथा बालों का बेवक्त सफेद होना दूर होता है।

4. कुमारी तेल – घी कुआर के स्वरस से यह तेल तैयार करते हैं। यह जलने के घाव पर अत्यंत उपयोगी है। बालों के लिए भी हितकर है।

5. बीजपर्ण तेल – पर्णबीज के पत्तों के स्वरस से यह तेल तैयार करें। यह तेल हर प्रकार के घाव में उपयोगी है।

6. रसोन तेल – लहसुन के काढ़े से तैयार तेल कान के दर्द में अत्यंत उपयोगी होता है।

बीजपर्ण तेल बनाएं

बीजपर्ण के पत्रों का स्वरस 1600 मि. ली., पत्तों की लुगदी 50 ग्राम, तिल तेल 400 मि. ली. लें। लुगदी, स्वरस और तेल को एक साथ पकायें। जब केवल तेल रह जाये तो तेल को तैयार जानें।

मंजिष्ठा–एला तेल

50 ग्राम मजीठ और 50 ग्राम इलायची को पानी मिलाकर महीन पीस लें। 800 ग्राम मजीठ और 800 ग्राम इलायची का मोटा चूर्ण बना लें। इन दोनों चूर्णों में कुल 6400 मि. ली. पानी मिलाकर उबालें। 1600 मि. ली. बच रहने पर उतार लें। अब चटनी, काढ़ा और तिल का तेल एक साथ मिलाकर पकायें। जब केवल तेल रह जाय तो उतार कर तेल में पड़ा कल्क कल्छी से निकाल कर हाथ से मलें। मर्दन करने से कल्क बत्ती जैसा लंबा हो जाय तथा आग पर डालने से चटचट न करे तो तेल को तैयार समझें। तेल तैयार होने पर झाग उठने लगता है और जिन द्रव्यों के साथ पकाया गया है उनका गंध, रंग तथा स्वाद आने लगता है।

गर्भकालीन सावधानियां

वैद्य अनन्त कुमार आचार्य

गर्भावस्था और प्रसवकाल में महिलाओं की मृत्युदर उन्नत देशों की तुलना में हमारे देश में अधिक है। भारत में प्रति हजार महिलाओं में पांच महिलायें गर्भावस्था के समय मर जाती हैं गर्भकालीन सभी प्रकार की सावधानी का पालन करके 2000 ई तक यह मृत्युदर प्रति हजार 2 से कम की जा सकती है।

हमारे देश में महिलाओं की गर्भकालीन मृत्यु का मुख्य कारण दरिद्रता और शिक्षा का अभाव है। दरिद्र कृषि प्रधान भारतवर्ष की महिलाओं में रक्तहीनता देखी जाती है। रक्तहीनता की अवस्था में गर्भस्थ शिशु द्वारा मां का रक्त ग्रहण करने के कारण रक्तहीनता दुगुनी हो जाती है। पुष्टि कारक खाद्य भारत की महिलाओं के लिये सम्भव नहीं है क्योंकि सबका भोजन हो चुकने के बाद बचा–खुचा खाना ही वह ले पाती हैं।

प्रथम गर्भधारण 18 से कम और 35 वर्ष से अधिक की उम्र में उचित नहीं है क्योंकि 18 से कम और 35 से अधिक की उम्र में पहली बार गर्भ धारण करने से प्रसवकालीन जटिलता हो सकती है। गर्भवती होने का उचित समय 20-30 वर्ष है।

प्रथम गर्भ में माता का रक्त ग्रुप और आर एच की जांच करने के साथ ही पति का रक्त वी.डी.आर.एल. की भी जांच करके तदनुरूप चिकित्सा ग्रहण करना उचित है।

गर्भवती को दैनिक 2500 कैलोरी की आवश्यकता होती है तथा पर्याप्त मात्रा में दूध, माँस, मछली हरी सब्जी, दाल, साग, फल इत्यादि ग्रहण करना उचित है।

गर्भवती को रोज 8 से 10 घण्टा सोना उचित है। उसे दैनिक कार्य स्वयं करना चाहिये परन्तु थक जाने पर परिश्रम करना उचित नहीं है। कोई भी भारी वस्तु उठाना उचित नहीं है। खुले स्थान पर घूमना उचित है, ढीली और साफ पोशाक पहनना उचित है पर उसे धूम्रपान, मदिरा इत्यादि का सेवन नहीं करना चाहिये। साधारण सर्दी सिरदर्द इत्यादि में औषध लेने से पहले डाक्टर का परामर्श लेना चाहिए।

- गर्भावस्था के प्रथम तीन महीने और अंतिम डेढ़ महीने में यात्रा और सहवास करना उचित नहीं है।
- माता उच्च रक्त चाप व्याधि से पीड़ित हो तो यह शिशु के लिये हानिकारक होता है। इस समय में चक्कर आने और दौरे पड़ने पर तुरन्त चिकित्सक को संपर्क करना चाहिए।
- माता मधुमेह की शिकार हो तो शिशु में विकृति हो सकती है व निर्दिष्ट समय से पूर्व शिशु जन्म हो सकता है।
- माता हृदय विकार से पीड़ित हो तो शिशु की वृद्धि से माता के हृदय के ऊपर भार पड़ता है ऐसी दशा में माता को प्रसव तक अस्पताल में भर्ती करना उचित है।
- गर्भकाल में मुंह, पैर फूल जाने और शिशु के घूमने का अनुभव न हो तथा पेशाब की जलन, बार–बार पेशाब, पेट के नीचे दर्द, कम्पन के साथ ज्वर, जलस्राव व रक्तस्राव हो तो डाक्टर से तुरन्त परामर्श लेना चाहिए।
- डाक्टर के द्वारा निर्दिष्ट प्रसव का दिन पास आने पर गर्भिणी को कुशल दाई या चिकित्सक के पास जाना उचित होता है। गर्भ में जुड़वां संतान होने, गर्भस्थ शिशु के उल्टे, टेढ़े होने, रक्तहीनता की स्थिति अथवा पहली संतान के शल्यक्रिया से उत्पन्न होने पर अगला प्रसव कुशल चिकित्सक की देखरेख में ही कराना चाहिए।

राजकीय आयुर्वेदिक कालेज
राजपुर, सुन्दरगढ़, उड़ीसा

पृष्ठ 17 का शेष

इससे आयुर्वेद का स्थान गौण होने लगा और स्नातक एलोपैथिक औषधियों का व्यवहार करने लगे और अपने को वैद्य के स्थान पर डाक्टर घोषित करने लगे। इस पद्धति से कई कठिनाइयां और अशान्ति के कारण उत्पन्न हुए, परिणाम स्वरूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्थापित आयुर्वेदिक कालेज वर्ष 1960 में बन्द कर दिया गया। मिश्र पद्धति की प्रतिक्रिया में पुनः शुद्ध आयुर्वेद के समर्थन की लहर चली। वर्ष 1962 में केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् ने शुद्ध आयुर्वेद का पाठ्यक्रम लागू करने का निर्णय लिया। परन्तु फिर भी इसका स्वरूप शुद्ध नहीं रहा। विभिन्न राज्यों में आयुर्वेद के पाठ्यक्रमों में एकरूपता भी नहीं थी। भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् के गठन के बाद उसकी सिफारिश से आयुर्वेद की शिक्षा में एकरूपता का प्रयास हुआ। आयुर्वेद की शिक्षा के विकास में अगला कदम था वर्ष 1956 में जामनगर में आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना और तत्पश्चात् वर्ष 1963 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय संस्थान का प्रारंभ हुआ।

अनुसन्धान के क्षेत्र में भी स्वातंत्र्योत्तर काल में पहल हुई और वर्ष 1953 में जामनगर में सेन्ट्रल इस्टीट्यूट आफ रिसर्च इन इण्डिजिनस सिस्टम्स आफ मेडिसिन की स्थापना हुई। वर्ष 1969 में सेन्ट्रल कौन्सिल फार रिसर्च इन इण्डियन मेडिसिन एण्ड होमियोपैथी की स्थापना हुई। आज विभिन्न आयुर्वेदिक महाविद्यालयों, स्नातकोत्तर संस्थानों और अनुसंधान संस्थानों में आयुर्वेद पर अनुसंधान का कार्य किया जाता है।

(अगले अंक में समाप्त)

स्वस्थ शिशु कैसे प्राप्त करें?

डा. किरन प्रकाश

गर्भवती महिला को पौष्टिक भोजन करना चाहिए

एक स्वस्थ, सुन्दर प्रसन्नचित्त शिशु प्राप्त करने के लिए कुछ सावधानियां मां को गर्भावस्था से ही प्रारम्भ करनी चाहिए क्योंकि गर्भकाल से ही गर्भ में पल रहे बच्चे के शारीरिक, मानसिक विकास का स्तर बहुत कुछ मां के पोषण और शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

गर्भाधान से साल–छह माह पहले से ही नियमित व व्यवस्थित दिनचर्या बना लें व शुद्ध और पौष्टिक भोजन लें जिससे कि आप शिशु रूपी बीज को अंकुरित करने में पूर्ण रूप से स्वस्थ रहें।

जैसे ही आप को ज्ञात हो कि आप गर्भवती हो गई हैं सारी चिंताएं छोड़कर, अच्छी किताबें पढ़ें, अच्छा संगीत सुनें व खुश रहें और यह सोचें कि हमें एक सुन्दर, स्वस्थ तथा अच्छे मानसिक स्तर का शिशु प्राप्त करना है।

गर्भावस्था के शुरू के महीनों में जी मिचलाना, चक्कर आना या बार–बार पेशाब आने जैसे लक्षण दिख सकते हैं। अधिकतर यह लक्षण तीसरे महीने में स्वयं ही शान्त हो जाते है।

आहार को एक साथ न लेकर थोड़ी–थोड़ी मात्रा में कुछ समय के अन्तराल पर लेकर इन स्थितियों से उबरा जा सकता है, लेकिन अगर निरंतर उल्टी हो, सिर चकराए, नजर धुंधली होने के साथ भयंकर सिर दर्द हो तो कुशल चिकित्सक से अवश्य सलाह लेनी चाहिए।

पहले तीन माह में कम से कम एक बार डाक्टरी जांच लाभकारी है। अपने डाक्टर की सलाह से अपना ब्लड ग्रुप व पति का आर.एच. फैक्टर, खून में हीमोग्लोबिन की मात्रा, ब्लड प्रेशर व पेशाब की जांच अवश्य करा लेनी चाहिए।

वजन, रक्तचाप व अन्य बीमारियों और संभावित जटिलताओं पर नियंत्रण रखने के लिए डाक्टर से सलाह लेती रहिए। मधुमेह या कोई अन्य बीमारी हो तो डाक्टर को अवश्य बता दें। यदि पहले गर्भावस्था के समय कुछ अड़चनें रही हों जैसे समय से पूर्व गर्भ गिर गया हो या मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ हो या रक्तस्राव होता रहा हो, तो इसकी पूर्ण जानकारी अपने डाक्टर को अवश्य दें जिससे सही उपचार हो सके।

गर्भस्थ शिशु के सही विकास के लिए गर्भवती मां की सबसे अधिक जिम्मेदारी होती है और इसलिए अपने खान–पान, व्यायाम आराम पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। अपने गर्भ में पलते हुए शिशु के पोषण का एकमात्र साधन आप हैं इसलिए आपका आहार पूरी तरह पौष्टिक होना चाहिए। भोजन में कच्ची सब्जियां तथा ताजे फल अधिक मात्रा में लें, तथा चीनी, नमक और अधिक चिकनाई वाले आहार का सेवन कम करें, ऐसे समय में आहार मिला जुला एवम् संतुलित होना चाहिए। गर्भावस्था में आपको प्रति दिन लगभग 300 कैलोरी और स्तनपान के समय लगभग 500 कैलोरी अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है पर अपने शरीर का वजन अत्यधिक न बढ़ने दें। आपको दो के लिए खाना चाहिए परन्तु दुगना नहीं। यदि आपको लगे कि आपके शरीर का वजन उचित नहीं है तो आहार इत्यादि के बारे में अपने डाक्टर से सलाह लें।

प्रोटीन – प्रोटीनयुक्त आहार आपके शिशु के शारीरिक निर्माण के लिए ही नहीं बल्कि आपकी अपनी शारीरिक क्षति पूर्ति के लिए आवश्यक है, मांस, मछली एवं अंडे प्रोटीन के अच्छे स्रोत है, शाकाहारी व्यक्तियों को दूध / दूध से बने पदार्थ, दालें एवं फलियां पर्याप्त मात्रा में लेना चाहिए।

लौह तत्व – गर्भवती महिला के लिए लौह तत्व अधिक मात्रा में आवश्यक है, क्योंकि इस अवस्था में शिशु को अपने लिए लौहतत्व संचित करना होता है, आपके शरीर में बन रहे अतिरिक्त रक्त को आक्सीजन के संचार के लिए लौह तत्व की आवश्यकता होती है। लौह तत्व कम लेने से एनिमिया (खून की कमी) हो सकती है।

सेब, राजमा, काबुली चना, सोयाबीन, किशमिश, पुदीना और चने की दाल, पत्तेदार हरी सब्जियां लौह तत्व के अच्छे स्रोत हैं।

विटामिन सी – विटामिन सी मजबूत नाल (प्लेसेन्टा) बनाने में सहायक होता है और गर्भवती महिला के शरीर को रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है तथा लौह तत्व को बढ़ाता है। ताज़े फल और सब्जियां जैसे नींबू, आलू, बन्दगोभी, संतरा और टमाटर आदि विटामिन सी के अच्छे स्रोत हैं।

कैल्शियम – कैल्शियम आपके शिशु के दांत एवम् हड्डियों के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। शिशु की हड्डियां आठवें सप्ताह से बनना प्रारम्भ हो जाती है। ऐसे में गर्भवती महिला को साधारणतः दोगुना कैल्शियम लेना चहिए। दूध और पनीर में सरलता से पचने वाला कैल्शियम अधिक मात्रा में होता है, अन्डा, राजमा, मछली इसके अन्य स्रोत हैं।

रेशे – प्रायः गर्भावस्था में कब्ज हो जाता है अतः अपने भोजन में रेशेयुक्त तत्व बढ़ा देने चाहिए क्योंकि रेशेयुक्त तत्व कब्ज को दूर करते हैं। शुद्ध व साफ जल पर्याप्त मात्रा में लेना महत्वपूर्ण है। चावल, गेहूं, हरी पत्तेदार सब्जियां तथा हरी फलियां (सेम, लोबिया, इत्यादि) रेशेयुक्त भोजन के अच्छे स्रोत हैं।

फोलिक एसिड – गर्भ में पल रहे शिशु के स्नायु संस्थान के विकास के लिए फोलिक एसिड आवश्यक है, विशेष कर गर्भावस्था के पहले कुछ सप्ताह में। शरीर इस पोषक तत्व को संचित नहीं कर पाता है। ताजा हरी पत्तेदार सब्जियां, पालक और मूंगफली फोलिक एसिड के अच्छे स्रोत है। अपने शिशु की सुरक्षा की लिए कोई भी दवा अपने डाक्टर के सलाह के बिना न लें।

मद्यपान और धूम्रपान – गर्भावस्था में मद्यपान एवं धूम्रपान से बचना चाहिए क्योंकि इससे गर्म में पल रहे शिशु के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। काफी, चाय और गर्म चाकलेट में पाए जाने वाला तत्व कैफीन गर्भवती महिला और शिशु दोनों के लिए हानिकर है। इनका सेवन प्रतिदिन एक या दो कप तक सीमित रखें। सम्भव हो तो गर्भावस्था में बिलकुल छोड़ दें।

फास्ट फूड इस प्रकार के आहार में चीनी, नमक, वसा, अनावश्यक परिरक्षक, सुगन्ध एवम् रंग काफी मात्रा में होते हैं ऐसे भोजन के सेवन से बचना चाहिए।

प्रथम तीन माह और अन्तिम चार सप्ताह सहवास से परहेज करना चाहिए।

टिटनेस रोधी टीके लगवाना न भूलें।

गर्भवती स्त्री को तंग कपड़े व ऊंची एड़ी की सैंडिल नहीं पहननी चाहिए, बल्कि वस्त्र ढीले व सुविधाजनक होने चाहिए।

गर्भवती स्त्री को रात में कम से कम आठ घन्टे की नींद तथा दोपहर के भोजन के बाद दो घन्टे विश्राम करना चाहिए। कभी अगर बहुत थकान का अनुभव हो तो दस–पंद्रह मिनट आराम कर लेना चाहिए।

अपने शरीर की स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए। ब्रुचूक (निपल) यदि भीतर की तरफ दबे हुए हो ता क्रीम या तेल लगाकर उन्हें उंगली और अंगूठे के सहारे बाहर की तरफ लाएं इससे आगे चलकर नवजात शिशु को स्तन पान कराते समय परेशानी नहीं होगी।

उल्टियां अधिक होने, पेशाब के समय जलन और पीड़ा होने, रक्तस्राव होने और रक्तचाप बढ़ने, नजर में धुंधलापन या अंधेरा–सा छा जाने, अचानक पेट में असामान्य दर्द उठने तथा गर्भस्थ शिशु की हृदय गति धीमी हो जाने या एकदम बढ़ जाने पर तुरन्त डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए।

94/5, बाबू पुरवा, किदवाई नगर
कानपुर – 208011

बच्चे की दवा मां को खिला दें

विभिन्न अनुसंधानों से पता चला है कि स्तनपान कराने वाली माताएं अगर किसी औषधि का सेवन करती हैं, तो हो सकता है कि उसका कुछ अंश बच्चे को भी मिल रहा हो। इस धारणा पर विश्वास कर किए गए अनुसंधान के अनुसार विशेषज्ञ अब यह मानने लगे हैं कि यदि नवजात शिशु को दवा देनी हो तो वह दवा माँ को खिला देनी चाहिए। एक अनुसंधान के दौरान शोधकर्ताओं को अल्सर प्रतिरोधी दवाएं माँ के दूध में आवश्यकता से अधिक मिलीं, जो एक आश्चर्यजनक बात थी, क्योंकि अब तक यही माना जाता था कि औषधियों की बहुत कम मात्रा ही माँ के दूध में आती है। मगर अब लगता है कि दूध में ग्लूकोज और एमिनो एसिड, जो कैरियर प्रोटीन होते हैं, वही औषधि की अधिक मात्रा ले जाते हैं।

यह तथ्य अच्छा भी है और बुरा भी। बुरा इसलिए कि स्तनपान के दौरान माताओं को अधिक सावधान रहना होगा कि वे अनावश्यक दवाओं का सेवन न करें। अच्छा इसलिए है कि इस तरह बच्चों का उपचार भी संभव है।

बच्चों के व्यवहार पर नियन्त्रण की दवा!

संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय नार्कोटिक्स नियन्त्रण बोर्ड ने हाल ही में चेतावनी दी है कि अमेरिकी अभिभावक अपने बच्चों का व्यवहार सुधारने हेतु उन्हें दवाइयां खिलाने के आदी होते जा रहे हैं। अमेरिकी डॉक्टर भी शरारती बच्चों को ऐसी दवा देने में कोई हिचक नहीं दिखाते। इस दवाई का रासायनिक नाम मिथाइल फनिडेट है और बाज़ार में यह रिटैलिन के नाम से बिकती है। वहां डॉक्टर अन्य उपचार या सुधार के उपाय करने से पहले ही दवा देने को तत्पर होते हैं।

दरअसल चिकित्सा विज्ञान में एकाग्रता के अभाव के चलते उत्पन्न होने वाली गड़बड़ियों को एक रोग ही माना गया है। बच्चे जब एकाग्रता नहीं बना पाते तो उनका व्यवहार अजीब सा हो जाता है और स्कूल में उनका प्रदर्शन भी अच्छा नहीं रहता। स्वाभाविक है कि माता–पिता इससे परेशान हो जाते हैं। बाल्टीमोर की स्वास्थ्य परिषद् के डेनियल सेफर का अनुमार है कि 5–7 प्रतिशत अमेरिकी स्कूली बच्चे एकाग्रता अभाव के शिकार होते हैं। डेनियल सेफर के ही अनुमान के मुताबिक कुल बच्चों में से 2.5–3 प्रतिशत का उपचार मिथाइल फेनिडेट से किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के मुताबिक मिथाइल फेनिडेट का सेवन कर रहे बच्चे 3–5 प्रतिशत तक हो सकते हैं।

संयुक्त राष्ट्र से यह भी पता चलता है कि मिथाइल फेनिडेट की कुल मात्रा में से 90 प्रतिशत अमेरिका में ही खपती है। रिपोर्ट के अनुसार, हो सकता है कि इस दवा की कालाबाज़ारी भी शुरू हो चुकी हो। जिन बच्चों को यह दवाई दी जाती है, वे कई मर्तबा इसे अपने मित्रों को बेच देते हैं। इसके पीछे मान्यता यह है कि वे बच्चे एकाग्रता बनाकर परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन कर सकेंगे।

वर्ष 1995 में अमेरिका में इस दवाई की कुल 35 करोड़ खुराक का सेवन किया गया जो कि 1994 की तुलना में 50 प्रतिशत ज्यादा था। संयुक्त राष्ट्र नार्कोटिक्स नियन्त्रण मण्डल का अनुमान है कि बिक्री में इस भारी बढ़ोतरी की एक बड़ी वजह एक पालक संघ द्वारा किया जा रहा प्रचार हो सकता है। यह पालक संघ सीबा नामक कम्पनी द्वारा प्रायोजित है जो इस दवा का उत्पादन करती है। संयुक्त राष्ट्र ने इस पालक संघ की गतिविधियों की जांच का भी सुझाव दिया है। रिपोर्ट में पालक संघ का नाम नहीं दिया गया है। बहरहाल, द चिल्ड्रन्स एण्ड एडल्ट्स विद अटेन्शन डेफिसिट डिसऑर्डर्स ग्रुप ने इस पर आपत्ति की है। ग्रुप का मत है कि यह दवा पर्याप्त सुरक्षित व कारगर है, बशर्ते कि इसे चिकित्सक की निगरानी में लिया जाए।

मिथाइल फेनिडेट दरअसल एक ऐसी औषधि है जो अति–क्रियाशीलता के लिए दी जाती है, खास तौर से जब यह अति क्रियाशीलता विध्वंसक हो। परन्तु इसके कई साइड प्रभाव भी देखे गए हैं। इसका सबसे महत्वपूर्ण साइड प्रभाव तो बच्चों की वृद्धि पर होता है। कम–से–कम तीन अध्ययनों में पाया गया है कि लगातार इस दवाई का सेवन करने से बच्चों की वृद्धि धीमी हो जाती है। इसके अलावा हृदय व लिवर पर इसके प्रतिकूल असर भी देखे गए हैं। जहां तक मानसिक सिथति का सम्बंध है, तो इस दवाई के अजीबोगरीब प्रभाव हो सकते हैं।

परन्तु सवाल यह नहीं कि कोई दवा कितनी कारगर या सुरक्षित है। सवाल यह है कि हम किन–किन सामाजिक समस्याओं को चिकित्सा व उपचार के दायरे में रखना चाहेंगे। सवाल यह भी है कि क्या हमारी तन्दुरुस्ती का चिकित्साकरण उचित है।

(स्रोत फीचर्स)

अब गाय का दूध मां के दूध में बदला जा सकेगा

प्रकाश कुमार आलोक, सहरसा

शिशु के लिए मां का दूध सर्वोत्तम आहार माना गया है लेकिन विशेष परिस्थितियों में जब मां का दूध शिशु को नहीं मिल पाता तो उसे गाय का दूध अथवा डिब्बे के दूध पर निर्भर रहना पड़ता है। हालांकि यह बात दूसरी है कि ये सब मां के दूध का स्थान नहीं ले सकते। लेकिन विज्ञान के इस दौर में शायद कुछ भी असंभव नहीं लगता। अमेरिका कृषि विभाग के वैज्ञानिकों ने एक ऐसी प्रक्रिया विकसित की है जिसके अनुसार गाय के दूध को मां के दूध के समकक्ष बनाया जा सकता है। वैज्ञानिकों के अनुसार जो शिशु अपने पहले वर्ष में गाय का दूध पीते है उनमें लौह तत्व और कुछ विटामिन्स की कमी हो जाती है (विदित हो कि गाय के दूध में विटामिन सी एकदम कम रहता है परन्तु सोडियम और प्रोटीन की अधिकता हो जाती है)। गाय के दूध में "बीटा-लैक्टोग्लोब्यूलिन" नाम का एक प्रोटीन रहता है जो मां के दूध में नहीं पाया जाता। इस प्रोटीन की वजह से शिशुओं को अनेक तरह की एलर्जी हो सकती है। वैज्ञानिक जॉन वोयचित के अनुसार इस विकसित प्रक्रिया द्वारा गाय के दूध से बीटा-लैक्टोग्लोब्यूलिन सहित अन्य दूसरे अवांछित प्रोटीन को अलग कर इसे मां के दूध के स्तर का बना दिया जाता है जो शिशु के लिए मां के दूध की तरह ही सुपाच्य हो जाता है।

कामकाजी बच्चों की सेहत पर खतरे

बच्चों को विशेष देखभाल की जरूरत होती है। कारखानों व अन्य स्थानों पर काम करने वाले बच्चों के बारे में जो मौजूदा कानून हैं उनका समुचित पालन नहीं किया जा रहा है। ऐसे कई क्षेत्र हैं, जहां कोई कानूनी सुरक्षा है ही नहीं। नतीजा यह होता है कि इन बच्चों के स्वास्थ्य पर तरह–तरह के खतरे मंडराते रहते हैं।

यहां हम उत्तर प्रदेश के कुछ उद्योगों के संदर्भ में बतौर उदाहरण चर्चा करेंगे। ये वे उद्योग हैं जिनमें बड़ी तादाद में बच्चे काम करते हैं, बावजूद इसके कि इन उद्योगों को खतरनाक घोषित किया जा चुका है।

खुर्जा का बर्तन उद्योग

खुर्जा का बर्तन उद्योग लगभग 600 वर्ष पुराना है। खुर्जा में मिट्टी के बर्तन के व्यवसाय में तकरीबन 20,000 लोग काम करते हैं। इनमें से 5,000 बच्चे हैं, जिनकी उम्र 14 वर्ष से कम है।

मिट्टी के बर्तन का उद्योग सेहत की दृष्टि से काफी खतरनाक है तथा इसमें बच्चों को काम देने पर प्रतिबन्ध है। राष्ट्रीय श्रम संस्थान द्वारा किए गए अध्ययन से पता चला है कि इस व्यवसाय में लगे जितने भी कारीगर अस्पताल आते हैं उनमें से अधिकांश ब्रान्काइटिस और टी.बी. से पीड़ित होते हैं। बर्तन कामगारों में तीसरी सबसे प्रमुख बीमारी सिलिकोसिस है। सिलिकोसिस फेफड़ों का एक रोग है। जो सिलिका–युक्त धूल में सांस लेने से होता है। इससे पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है। सिलिकोसिस लाइलाज व्यवसायगत बीमारी है। यह अधिकतर उन कामगारों को होती है जो उस मशीन पर काम करते हैं, जिसमें बर्तन के फालतू टुकड़ों को पीसकर पुनः उपयोग के काबिल बनाया जाता है।

बर्तन पकाने की भट्टी पर काम करने वाले कामगारों की दृष्टि 45 वर्ष की उम्र तक जाती रहती है। भट्टी में आग सुलगाए रखने के काम के अलावा एक और खतरनाक काम वह है जिसमें लगातार भट्टी में से नमूने निकालकर उनकी जांच करते रहना होता है। यह काम काफी खतरनाक होता है क्योंकि आंखों को करीब 1400 डिग्री सेल्सियस तापमान का सामना करना होता है। भट्टी पर काम करने वाले अधिकतर बच्चों को निरन्तर सर्दी, जुकाम और खांसी की शिकायत रहती है।

कामगारों को आम तौर पर दस्ताने या जूते वगैरह नहीं दिए जाते। वे नंगे हाथों से ही सिरेमिक के साथ काम करते है। नतीजतन सिरेमिक के नुकीले टुकड़े उन्हें नुकसान पहुंचाते रहते हैं।

अलीगढ़ का ताला उद्योग

ताला उद्योग भी 100 वर्ष पुराना है। शुरूआती दौर में यह शुद्ध रूप से एक कुटीर उद्योग था। हालांकि अब कारखानों में बड़े पैमाने पर तालों का उत्पादन होने लगा है मगर फिर भी इस उद्योग में देहाती कारीगरों व बाल मजदूरों को काम मिलता है। अलीगढ़ का ताला उद्योग आज भी लघु उद्योग क्षेत्र में है। इस उद्योग में करीब 90,000 लोग कार्यरत हैं, जिनमें 10,000 बच्चे होंगे।

इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं कि बफिंग मशीन पर पॉलिशिंग का काम, इलेक्ट्रोप्लेटिंग तथा स्प्रे पेन्टिंग का काम मजदूरों की सेहत के लिए हानिप्रद है, चाहे वे बड़े हों या बच्चे। परन्तु कई रोग बच्चों को ज्यादा प्रभावित करते हैं।

पॉलिशिंग का काम शायद सबसे ज्यादा खतरनाक है। धातु के जंग लगे टुकड़ों पर बफिंग मशीन से पॉलिश की जाती है। मशीन में लगी घिरनी पर एमरी पाउडर लगा होता है। धातु के टुकड़ों को हाथ से पकड़कर घूमती घिरनी से घिसकर साफ किया जाता है। कामगार की सांस के साथ एमरी तथा धातु की महीन धूल फेफड़ों में घुसती है। पॉलिश का काम करने वाले लगभग सभी कामगार सांस की तकलीफों व टी.बी. से पीड़ित रहते हैं।

इलेक्ट्रोप्लेटिंग इकाइयों में काम करने वाले मजदूरों पर फेफड़ों के कैन्सर का खतरा मंडराता है। बच्चे पोटेशियम साइनाइड, नमक के तेज़ाब, गंधक के तेज़ाब जैसे खतरनाक रसायनों के घोलों में हाथ डालते रहते हैं। खतरनाक रसायन मुंह में चले जाने पर हो जाने वाली मृत्यु की खबरें भी प्रकाशित होती रहती हैं।

जो बच्चे स्प्रे पेन्टिंग इकाइयों में काम करते हैं वे काफी मात्रा में पेन्ट व थिनर की खुराक सांस के साथ लेते रहते हैं। नतीजा यह होता है कि उनको सांस संबन्धी कई तकलीफों का सामना करना पड़ता है। सांस फूलना, बुखार, टी.बी. ब्रोन्काइटिस, दमा तथा निमोकोनिऑसिस कुछ प्रमुख रोग हैं जो ताला उद्योग में काम करने वाले बच्चों को डसते हैं। इसके अलावा ताला बनाने वाले मज़दूरों को कई अन्य व्यवसाय–जनित रोगों का सामना भी करना होता है। इनमें चर्म रोग (डर्मेटाइटिस), एक्ज़िमा तथा फेफड़े का कैन्सर भी शामिल है।

ताला उद्योग में जो बच्चे हैण्डप्रेस पर काम करते हैं उनकी उंगलियों के सिरों की संवेदना खत्म हो जाती है। कुपोषण व गरीबी के चलते इन बीमारियों के प्रभाव और भी गम्भीर हो जाते हैं तथा उनकी आयु कम हो जाती है।

पॉलिश का काम करने वाले अधिकांश मज़दूर सीने की टी.बी. से ग्रस्त रहते हैं। ताला उद्योग के मज़दूर लगातार

खनिज–धूल के सम्पर्क में रहते हैं। इसमें लौह व पीतल के कण बहुतायत में होते हैं। पॉलिशिंग के दौरान क्रोम, निकल व अन्य अकार्बनिक व कार्बनिक कण भी उनके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उन्हें कुछ भी निगलने में दिक्कत होती है तथा धीरे–धीरे सांस लेने में भी दिक्कत होने लगती है। अधिकांश कारखानों में हवा के आवागमन का कोई प्रबंध नहीं है और एक ही जगह पर कई मज़दूर काम करते हैं। इसकी वजह से समस्याएं और बढ़ जाती हैं।

मुरादाबाद का पीतल उद्योग

देश में धातु की कलाकृतियों और बर्तनों के उत्पादन का एक प्रमुख केन्द्र मुरादाबाद है। करीब तीन दशक पहले तक पीतल उद्योग एक कुटीर उद्योग था। परिवार के लोग ही इस काम को करते थे, धीरे–धीरे इन चीज़ों के निर्यात की सम्भावनाएं सामने आई और मज़दूरों की मांग बढ़ने लगी। एक अनुमान के मुताबिक मुरादाबाद के पीतल बर्तन उद्योग में तकरीबन 50,000 बाल मज़दूर काम करते हैं।

पीतल बर्तन उद्योग की दो सबसे खतरनाक प्रक्रियाएं, ढलाई और पॉलिशिंग हैं। और इन्हीं दो क्षेत्रों में सर्वाधिक बाल मज़दूर लगे हैं इलेक्ट्रोप्लेटिंग व वेल्डिंग भी उतने ही खतरनाक काम हैं। बॉक्स–मोल्ड भट्टी का काम निहायत जोखिम भरा होता है। यहां बच्चे पहिए को घुमाकर भट्टी की आग को तरोताजा रखते हैं। जब भट्टी एक निश्चित ताापमान पर पहुंच जाती है, तब बच्चे इस भूमिगत भट्टी के ऊपरी ढक्कन को खोल कर तथा उसमें थोड़ा–सा पाउडर डाल कर इसकी जांच करते हैं। जब कच्चा माल तथा पिघला हुआ पीतल तैयार हो जाता है, तब भट्टी के मुंह से लपटें निकलने लगती हैं। बच्चा एक बड़े चिमटे की मदद से पिघले हुए पीतल से भरी कड़ाही को उठाता है और इस कड़ाही को किसी वयस्क की ओर बढ़ा देता है, जो इस पीतल को पहले से तैयार सांचे में उंड़ेल देता है।

सांचे में ढालना भी एक अत्यंत जोखिम भरी प्रक्रिया है और इसमें थोड़ी सी भी चूक हुई तो बच्चा बुरी तरह घायल हो सकता है तथा अपने हाथ–पैर भी गंवा सकता है। बच्चों को कोई सुरक्षात्मक वस्त्र भी नहीं दिए जाते। वे भट्टियों के ऊपर नंगे पांव खड़े रहते है, जहां तापमान 1100 डिग्री सेल्सियस होता है। यदि पिघले पीतल की एक बूंद भी पैर पर गिर गई तो वहां छेद हो जाता है। बच्चे लगातार भट्टी से उठने वाले गर्म धुएं व गैसों में सांस लेते हैं। इसकी वजह से वे सांस सम्बंधी कई तकलीफों के शिकार हो जाते हैं।

पॉलिशिंग मशीन पर काम करने वाले बच्चे भी काफी जोखिम झेलते हैं। वे धातु कण व प्रयुक्त मसाले की धूल में सांस लेते हैं। बफिंग मशीन पर पॉलिश किए जाने से पूर्व चीज़ों को तेज़ाब से साफ करना होता है। जिस कमरे में यह काम होता है, वहां आप ठहर तक नहीं पाएंगे। बदबू इतनी तीखी होती है कि आंखें जलने लगती हैं।

फिरोज़ाबाद का कांच उद्योग

आगरा के समीप बसा फिरोज़ाबाद कांच की चूड़ियों तथा अन्य सजावटी वस्तुओं के लिए मशहूर है। कांच उद्योग में लगभग 50,000 बच्चे काम करते हैं। दुनिया भर में बाल मज़दूरों का इतना ज्यादा अनुपात कहीं नहीं पाया जाता।

कांच उद्योग में दो तरह की भट्टियां प्रयुक्त होती हैं – एक होती है कड़ाही भट्टी, जिसमें चूड़ियां बनाई जाती हैं तथा दूसरी टैंक भट्टी होती है, जिसमें अन्य चीज़ें बनाई जाती हैं। कड़ाही भट्टियों का तापमान लगभग 700–800 डिग्री सेल्सियस होता है। टैंक भट्टी कहीं ज्यादा बड़ी होती है तथा इनका तापमान भी 1,800 डिग्री सेल्सियस तक होता है। गर्मी के दिनों में तो तापमान इतना अधिक होता है कि सिर्फ कठोरतम मज़दूर ही काम कर पाते हैं।

इस गर्मी के अलावा, जिन कारखानों में प्रेस पर गिलास बनाए जाते हैं, वहां तो शोर भी बहरा कर देने वाला होता है। गर्मी, शोर तथा धूल का मिला–जुला प्रतिकूल असर मज़दूरों पर पड़ता है। टी.बी. का प्रकोप बहुत ज्यादा होता है तथा मज़दूरों की जिन्दगी में 10–15 साल की कमी आ जाती है। क्रोमेट कांच वाले उद्योगों में ब्रोन्काइटिस तथा कैंसर के मामले भी देखने में आते हैं।

कालीन उद्योग

कालीन उद्योग एक पेचीदा व्यवसाय है। इसमें कई सारे काम ठेके व उप–ठेके पर करवाए जाते हैं। जहां तक बाल मज़दूरी का सवाल है तो सबसे पहला नम्बर बुनाई ठेकेदारों का आता है।

अधिकांश मामलों में प्रवासी बाल मज़दूर उसी कमरे में रहते हैं जहां करघा लगा होता है। कमरों का क्षेत्रफल इतना कम होता है कि बाल मज़दूर आराम से बैठ तक नहीं पाते। जिन जगहों पर बच्चे बैठते हैं वहां हवा के आवागमन की कोई व्यवस्था नहीं होती तथा प्रकाश व्यवस्था भी नाकाफी होती है।

आदिम टेक्नॉलॉजी, पुराने व जीर्ण–शीर्ण मकान, हवा का अनुपयुक्त व अपर्याप्त आवागमन तथा अपर्याप्त प्रकाश व्यवस्था, अस्तव्यस्त व असुविधाजनक कार्यस्थल में कई लोगों का काम करना आदि ऐसे कुछ खतरे हैं जिनमें बुनकर परिवार तथा मज़दूर काम करते हैं।

बच्चों से बुनाई के अलावा घरेलू काम भी करवाया जाता है। कालीन उद्योग में कार्यरत 50 प्रतिशत बच्चे खून की कमी तथा पेट के कीड़ों से पीड़ित रहते हैं।

छाले, पैरों में सूजन, जोड़ों में दर्द आम तकलीफें हैं। टी.बी. का प्रकोप बहुत ज्यादा है। लगातार करघों पर बैठे रहने के कारण हाथीपांव हो जाना आम बात है। पेचीदा डिज़ाइनों व कालीनों को देख–देख कर बच्चे रतौंधी पीड़ित होकर अपनी दृष्टि से हाथ धो बैठते हैं। बुनाई में प्रयुक्त धातु के वज़नी पंजे व चाकू को लगातार इस्तेमाल करने से नाजुक उंगालियां क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।

कालीन को धोने की प्रक्रिया में प्रयुक्त रसायन भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

(स्रोत फीचर्स)

खांसी : कारण, बचाव एवं उपचार

सर्दियों में असावधानी बरतने से, यानी ठंड से पर्याप्त बचाव न करने से अथवा कफ बढ़ाने वाला भोजन लेने से खांसी होना एक आम बात होती है। आयुर्वेद ने इसे एक अलग बीमारी भी माना है और अन्य रोगों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला एक लक्षण भी कहा है।

यूं तो आयुर्वेद में खांसी की उत्पत्ति में अनेक बातों को हेतु माना है लेकिन सर्दियों में जो सामान्य रूप में खांसी हो जाती है वह प्रायः ठंड लगने से ही होती है। ठंडी लगने से श्वास नली, स्वरयंत्र या फेफड़े में सूजन होकर खांसी हो जाती है।

आयुर्वेद ने खांसी को गंभीरता से लेने को कहा है और यह गलत भी नहीं है। कहावत है कि झगड़े की जड़ हांसी और रोग की जड़ खांसी। यदि खांसी के प्रति लापरवाही दिखाई गई तो यह दिल को कमजोर और फेफड़ों को क्षतिग्रस्त भी कर सकती है।

खांसी से बचाव

सर्दियों में बदन पर पर्याप्त गर्म कपड़ों का रहना आवश्यक है। गला और छाती पर्याप्त रूप से ढंकी होनी चाहिए। बच्चों और बूढ़ों को तो विशेष रूप से ढंडक से बचाना चाहिए क्योंकि इनके बदन में रोग प्रतिकारक शक्ति स्वभावतः कम रहती है। इस मौसम में यदि आप गाड़ी आदि वाहनों से सफर करते हों तो हवा के सीधे झोंकों को अपने सिर और बदन पर न लगने दें रेलगाड़ी, बस आदि की सवारी में खिड़की रात को बंद कर देना ही ठीक रहता है।

ठंडी, चिकनी, बासी, चीजों के सेवन, दिन में सोने, बहुत ज्यादा पानी के संपर्क में आने आदि से परहेज रखें। क्योंकि इनसे दोषों की विकृति होती है और समय पाकर खांसी जैसी बीमारी हो सकती है। कफ प्रकृति के लोगों या दुर्बल, रोग ग्रस्त व्यक्तियों को तो इस मौसम में खास तौर पर उपर्युक्त हिदायतों का पालन करना चाहिए।

यदि आप संयमित आहार–विहार का पालन करते हैं तो खांसी के चपेट में आने की संभावना ही नहीं रहती। लेकिन किसी कारणवश यदि आप मौसम की इस कष्टकारक व्याधि के शिकार हो ही गये हों तो निम्न औषधियों का प्रयोग कर इससे छुटकारा भी पा सकते हैं–

- अनार के सुखाये छिलकों का चूर्ण पचास ग्राम और सेंधा नमक का चूर्ण पांच ग्राम लें इन दोनों को भलीभांति मिला कर इसमें गोलियां बनाने लायक मात्रा में शहद मिला लें। एक–एक ग्राम की गोलियां बना कर दिन भर चार–पांच बार एक–एक गोली चूसा करें। इससे गले की खुश्की और खांसी में लाभ होता है।
- 1–1 चम्मच अदरक के रस और शहद में एक ग्राम सेंधा नमक मिला कर दिन भर में तीन–चार बार सेवन करने से खांसी दूर हो जाती है।

  सभी तरह की खांसी में लाभकारी एक उत्तम योग आप इस तरह से तैयार कर सकते हैं:
- कालीमिर्च और छोटी पीपल 10–10 ग्राम, अनार का छिलका 20 ग्राम और जवाखार 5 ग्राम लेकर सभी को पीस–छान कर मिला लें। अब लगभग 80 ग्राम गुड़ लेकर इसकी चाशनी बना कर इसमें ऊपर की सभी चीजें मिला कर दो–दो ग्राम की गोलियां बना लें। दिन भर में पांच–छह दफा एक–एक

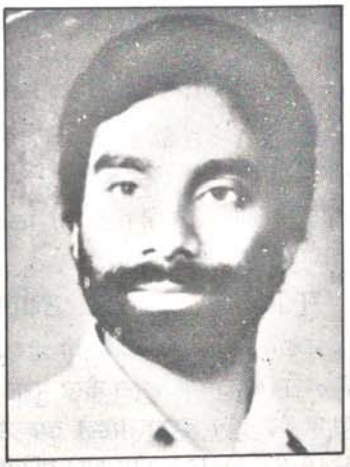

डा प्रकाश कुमार आलोक

गोली चूसने से नयी–पुरानी सभी खांसियों में फायदा होता है।

खांसी–जुकाम दोनों को समाप्त करने का एक असरदार योग निम्न प्रकार से तैयार किया जा सकता है–

- बेर के कोमल पत्तों को भली–भांति धोकर पीस लें। इसकी छोटी–छोटी टिकिया बना कर धूप में थोड़ा सुखा लें। अब इसे घी में तल लें। ठंडा होने पर इन्हें पीस कर इसमें बराबर भाग सेंधा नमक पीस कर मिला लें। सुबह–शाम यह मिश्रण 1–2 ग्राम, शहद मिलाकर चाटा करें। सर्दी, खांसी, जुकाम सभी खत्म हो जाएंगे।
- हरड़, सोंठ, नागरमोथा और गुड़–सभी बराबर भाग मिला कर गोलियां बना लें। दिन भर में तीन–चार बार या जब भी खांसी का वेग उठे मुंह में एक गोली रख कर धीरे–धीरे चूसना चाहिए।

यदि खांसी पुरानी पड़ गई हो और साधारण दवाओं से कोई फायदा नहीं हो रहा हो तो आगे दिए योग को प्रयोग में लावें–

शेष पृष्ठ 28 पर

मधुमेह की आयुर्वेदिक चिकित्सा

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

मधुमेह बच्चों से लेकर बूढों तक सभी में पाया जाता है। जहां देखो वहीं इस के रोगी बढ़ते जा रहे हैं। आजकल यह रोग भारत में ही नहीं अपितु विश्व के सभी देशों में बढ़ता दिखाई दे रहा है। इस भयंकर बीमारी के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत रूप से विचार करना आवश्यक है।

रोग के मुख्य कारण

आयुर्वेद के अनुसार अनियमित आहार, मिथ्या आहार–विहार, अति मैथुन और चिंतित एवं भयभीत जीवन बिताना मधुमेह के चार कारण हैं। इनके अतिरिक्त आराम से बैठे रहना, परिश्रम न करना, दही के पदार्थ अधिक खाना, पालतू पशु तथा भेड़–बकरी का मांस खाना, नया अन्न खाना, बरसात का पानी पीना, गुड़ के बने हुए पदार्थ अथवा शक्कर बहुत अधिक खाना तथा कफ को बढ़ाने वाले पदार्थों का अधिक सेवन करने से भी मधुमेह हो सकता है।

आयुर्वेद में बीस प्रकार के प्रमेह रोग बताए हैं। इनमें से यदि किसी की भी चिकित्सा न की जाय तो यही रोग मधुमेह का रूप धारण कर लेते हैं। मधुमेह को दो रूपों में बाटा गया है, मूत्र के द्वारा और रक्ताश्रित होकर।

लक्षण

मधुमेह रोग में पेशाब मधु (शहद) के समान आने लगती है। यह रोग प्रायः धीरे–धीरे बढ़ता है। रोगी को बार–बार पेशाब के लिए जाना पड़ता है तथा वजन दिन–पर दिन कम होता चला जाता है। कमजोरी और थकावट बढ़ने लगती है और आंखों की रोशनी भी कम होने लगती है, रोगी को प्यास भी बार–बार लगती है, शरीर की चमड़ी रूखी व ढीली पड़ जाती है।

मूत्र को कुछ देर तक रोक कर रखने पर उसमें झाग से आते हैं और उस पर चींटी आदि जमा होने लगती हैं। मूत्र नलिका में खुजलाहट होती है। कभी–कभी चक्कर आते हैं और मन दुखी रहता है।

मधुमेह के रोगी को भूख भी अधिक लगती है। एक विशेष बात यह होती है कि यदि कहीं घाव हो जाय तो उसका भरना मुश्किल हो जाता है। इस रोग में कभी–कभी शरीर में गांठें भी उत्पन्न हो जाती है। वैसे तो मधुमेह का रोग कष्टसाध्य माना गया है, लेकिन बिगड़ जाने पर यह रोग असाध्य स्वरूप धारण कर लेता है। कभी–कभी शरीर में खुजली, फोड़े–फुंसी, ब्लडप्रेशर बढ़ना, मोटापा, हृदय रोग आदि का भी उपद्रव होता है।

परीक्षा

पेशाब करने के उपरांत उस स्थान पर चींटी, मक्खी आदि के बैठने से इस रोग की पहचान हो जाती है। आजकल आधुनिक साधनों से मूत्र एवं रक्त की परीक्षा करके इसका निर्णय करते हैं। ये परीक्षायें भोजन के पूर्व और भोजन के दो घंटे बाद की जाती हैं।

उपचार

मधुमेह का इलाज करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि रोगी का शरीर दुबला–पतला हो तो उसे शक्तिवर्धक आहार का निर्देश करना चाहिए। यदि शरीर स्थूल है तो शरीर हल्का करने के लिए उपवास आदि करना आवश्यक होता है।

शास्त्रीय प्रयोग

यशद भस्म– 2 रत्ती की मात्रा से पानी के साथ दिन में दो बार निरन्तर कुछ दिनों तक सेवन करें।

त्रिबंग भस्म– 2–2 रत्ती की मात्रा से मलाई के साथ सुबह–शाम सेवन करें।

शिलाजीत– 1–1 ग्राम की मात्रा से सुबह–शाम दूध के साथ मिलाकर तथा रात को सोते समय सेवन करना चाहिए।

वसंत कुसुमाकर– 1–1 गोली प्रतिदिन सुबह दूध के साथ सेवन करें।

चन्द्रप्रभावटी – 2–2 गोली सुबह–शाम दूध के साथ लेने से लाभ होता है।

शिलाजीत प्रयोग

इस बीमारी में शिलाजीत का प्रयोग सर्वविदित है। यह पहाड़ों से प्राप्त होने वाली औषधि है। विशिष्ट धातुओं के पहाड़ों में जब गर्मी की अधिकता से उसका सार–द्रव्य के रूप में पिघलने लगता है, तब पहाड़ी लोग उसे एकत्र कर लेते हैं, उसको शिलाजीत कहते हैं।

परीक्षा : असली शिलाजीत यदि अग्नि पर डाला जाय तो धुंआ नहीं देता और यदि सीक से जल में डाला जाय, तो तन्तुओं के समान फैलकर नीचे बैठ जाता है। यह स्वाद में कड़वा होता है।

गुण : एक ग्राम की मात्रा में इसका नित्य दूध के साथ सेवन किया जाय तो यह परम रसायन अर्थात् रोग एवं बुढ़ापा नष्ट करने वाली प्रमाणित होती है।

इसका विशेष प्रभाव मूत्र संस्थान पर होता है। अतः मूत्र रोगों में यह विशेष लाभदायक है। मधुमेह की बीमारी में भी शीघ्र लाभप्रद है।

वनस्पति प्रयोग

निम्न वनस्पति प्रयोग लाभकारी हो सकते हैं। इनमें से किसी भी औषध या उसका योग अपनी प्रकृति व रोग की अवस्था में अनुसार करें। लाभ होने की स्थिति में खून–पेशाब की जांच करवाते रहें और तभी निर्णय लें कि क्या दवा करते रहना है।

- विजयसार अथवा तगर की लकड़ी तांबे के बर्तन में रात भर भिगोये रखकर सुबह उठते ही उस पानी को पीना चाहिए। यह प्रयोग लगातार सौ दिन तक जारी रखें।
- हल्दी का चूर्ण एक ग्राम की मात्रा से या गीली हल्दी की गांठ को चबाकर अथवा नमक मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।
- खदिर, अर्जुन, शीशम की लकड़ी, गूलर के पत्र, जटामांसी, चिरायता, विधारा, इनका समान मात्रा में चूर्ण बनाकर एक छोटे चम्मच की मात्रा से दिन में दो बार पानी से अथवा इनको मिलाकर एक तोला को दो कप पानी में काढ़ा बनाकर चौथाई भाग शेष रहने पर रोज सुबह छान कर पीना चाहिए।

पृष्ठ 26 का शेष

- काकड़ासिंगी, पिप्पली, बहेड़ा, अनार का छिलका–सभी पचास–पचास ग्राम। सुहागे का फूला, काली मिर्च–पच्चीस पच्चीस ग्राम, मुलहठी एक सौ ग्राम, सभी को पीस छान कर मिला लें। दो सौ ग्राम गुड़ की चाशनी में सभी को मिला कर एक–एक ग्राम की गोलियां बना लें। एक–दो गोलियां तीन–चार बार चूसने से खांसी खत्म हो जाती है। बलगम यदि फेफड़ों में जम भी गया होगा तो इसके सेवन से निकल जाएगा।

पथ्य-अपथ्य

खांसी के रोगियों को ठंड से अपना बचाव करना चाहिए। खांसी और मल–मूत्र का वेग दबाना नहीं चाहिए। कब्जियत न रहने पाए इस ओर विशेष ध्यान रखें। धूल, धुएं और धूम्रपान से परहेज करना चाहिए।

चाणक्यपुरी
सहरसा – 852201 (बिहार)

- दारूहल्दी, जामुन की गुठली, गोखरू, जीरा, विडंग, खस, अनार बीज, सुहागा, लोध्र, सप्तरंगी, अरणी, जीरक, पीपल, सोंठ, काली मिर्च, करंज का प्रयोग भी लाभकारी होता है।
- बेलपत्र का स्वरस रोज सुबह दो तोले की मात्रा से पीना चाहिए।
- महुआ की छाल 6 ग्राम और काली मिर्च 4 रत्ती पीसकर ठंडे पानी से पीना चाहिए।
- गुड़मार की पत्तियों का रस प्रतिदिन एक औंस की मात्रा से सेवन करना चाहिए।
- नीम की पत्तियों का रस प्रतिदिन एक औंस की मात्रा से प्रातः काल सेवन करना चाहिए।

पथ्य

इस रोग में पथ्यापथ्य का भी विशेष महत्व है। पुराने गेहूँ, जौ, शालि चावल, कुलथी, मूँग, ज्वार आदि का सेवन लाभकारी होता है। शाक में करेला, लौकी, टिंडे, परवल, तोरई, सहिजन की फली विशेषतः कड़वी व रसीली सब्जियां लेनी चाहिए। पतला सत्तू, गेहूं का दलिया, सूजी, कांजी, मूंग, भिगोकर अथवा उबाल कर चने का पानी सेवन करना चाहिए। फलों में जामुन, फालसा, पपीता, चीकू, सेब, तरबूज का सेवन हितकारी है।

सवेरे नाश्ते में चाय या काफी 2 औंस दूध के साथ। दोपहर के भोजन में दो रोटी, एक चम्मच मक्खन या 2 पूरी, 6 औंस दूध (180 मि.ली.) एक कप पका चावल, हरा चना या आधा कप दाल, एक प्याला पत्तेदार या पत्तागोभी की सलाद।

सायंकाल दो औंस दूध के साथ चाय, नमकीन बिस्कुट अथवा फलों का सेवन। रात्रि का भोजन दोपहर के भोजन के समान लें।

अपथ्य

इस रोग में नया धान्य, नया चावल, उड़द की दाल का सेवन हानिकर होता है। शाक में आलू, फूलगोभी, कद्दू, रतालू, मटर एवं कंदमूल का सेवन नहीं करना चाहिए। मदिरा, सिरका, दही–लस्सी का भी सेवन नहीं करना चाहिए। फलों में केला, आम, गन्ना, संतरा, नींबू, मौसंबी अपथ्य हैं।

विशेष : धूम्रपान, मूत्र वेग धारण और रक्तदान नहीं करना चाहिए तथा दोपहर में सोना नहीं चाहिए।

विहार

प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर हरी दूब घास में नंगे पैर चलना चाहिए, तत्पश्चात् गुनगुने पानी से स्नान करना चाहिए।

अनुभूत प्रयोग

पिछले कुछ वर्षों से मधुमेह रोग में मैंने कुछ औषधि प्रयोग किये जिनका कि रोगियों पर बड़ा ही हितकारी प्रभाव हुआ। इससे मुझे प्रोत्साहन मिला और मुंबई अस्पताल के द्वारा मेडिकल रिसर्च स्कीम के अन्तर्गत जनवरी 86 से 31 दिसम्बर 86 तक अनुसंधान कार्य किया गया जिसमें कि रोगियों का पूर्ण विवरण फार्म पर लिया गया और इलाज प्रारंभ करने से पूर्ण उनकी मूत्र एवं रक्त परीक्षा की गयी है। यह परीक्षा भोजन के पूर्व तथा भोजन के दो घण्टे उपरांत की गयी। दो–तीन महीने के इलाज के बाद उनकी पुनः परीक्षा कराई गयी जिससे कि बड़ी ही लाभदायक जानकारी मिली।

इस प्रयोग में प्रातः काल मधुमेहान्तक चूर्ण 3 ग्राम पानी से दिया गया और मेहारिवटी तथा मेहान्तक वटी 2–2 गोली मिलाकर दिन में दो बार पानी के साथ दी गयी तथा शिला रसायन की 2 गोली रात को दूध के साथ सेवन करायी गई।

इन औषधियों से बहुत से रोगियों को लाभ हुआ। कुल 28 रोगियों की पूरी रिपोर्ट प्राप्त हुई जिनमें 25 रोगियों को लाभ हुआ। यह चिकित्सा क्रम आज भी जारी है।

48, महन्त रोड, पार्लेई, मुंबई - 406057

मधुमेह का देशी उपचार

वैद्य मायाराम उनियाल

मधुमेह एक विश्वव्यापी व्याधि है। आधुनिक एलोपैथी चिकित्सा इस व्याधि की सफल चिकित्सा करने में असमर्थ है। एलोपैथी डाक्टरों का कहना है कि डायोनिल, डायवनीन, आरटीसिन आदि कतिपय गोलियों एवं इन्सुलिन के प्रयोग से खून या पेशाब में ग्लूकोज़ को कम किया जा सकता है किन्तु रोग को जड़ से दूर नहीं किया जा सकता है।

अन्य देशों की तरह भारत में भी प्रमेह एवं मधुमेह के रोगियों की संख्या काफी अधिक है। आंकड़ों के आधार पर इस रोग के रोगियों की संख्या 4 करोड़ से भी अधिक है। प्राचीन मान्यताओं के आधार पर मधुमेह 40 से 60 वर्ष के व्यक्तियों में विशेष देखा जाता था, किन्तु अब युवक एवं युवतियों में भी यह रोग बढ़ता जा रहा है। इसका मुख्य कारण असंयमित भोजन एवं प्रकृति के विपरीत आहार–विहार के परिणामस्वरूप ओजक्षय है। आयुर्वेद ने मधुमेह को ओजोक्षय जन्य ओजोमेह माना है। इसका सबसे अधिक प्रभाव व्यापारी वर्ग, अध्यापक, वकील आदि व्यवसाय के लोगों पर पड़ा है।

शहद के समान मीठे पेशाब में चींटियां दिखाई देती हैं। मूत्र के साथ मधुर स्वभाव वाले ओज की हानि होती है। इस प्रकार मूत्रवह संस्थान से बार–बार मूत्र तथा ओजःक्षय होने से दुर्बलता बढ़ जाती है।

मधुमेह के सामान्य लक्षण

बार–बार पेशाब होना, प्यास और अधिक भूख लगना, शरीर का वजन कम होने से कमजोरी, गुप्तांगों में खुजली, जोड़ों में दर्द, आंखों की रोशनी में कमी आदि के लक्षण इसके रोगियों में देखने को मिलते हैं।

मधुमेह चिकित्सा

सर्वे रोगापि मन्दाग्नौ सुतरामुदराणिच
अ.स.नि.

अर्थात् आयुर्वेद के अनुसार सभी रोगों का आरम्भ उदर में मन्दाग्नि से होता है ऐसी दशा में इस प्रकारकी औषध व्यवस्था करनी चाहिए जो उत्पन्न व्याधि को ठीक करे परन्तु दूसरी व्याधि को उत्पन्न न करे। इस प्रकार की औषधि व्यवस्था आयुर्वेद चिकित्सा में सुलभ है, जिसमें इस व्याधि में उपयोगी भारतीय वनौषधि द्रव्यों के घटकों एवं खनिजों की उपादेयता .पर प्रकाश डाला गया है। प्राचीन काल में तिक्त द्रव्यों के प्रयोग की परम्परा विशेष रूप से प्रचलित रही है। यही कारण था कि घरेलू चिकित्सा में कुटकी, चिरायता, कालीजीरी, कडुवी गिलोय, कुटज, इन्द्रजौ, बकायन, नीम कन्दूरी, जामुन, करेला, अतीस, हरीतकी, अजवायन आदि परम्परागत द्रव्यों के प्रचलन की व्यवस्था थी। इन तिक्त कषाय द्रव्यों के प्रचलन के अभाव से मधुमेह के रोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है। लेखक के चिकित्सा अनुभव में जो घटक गुणकारी देखे गये, उनका उल्लेख निम्न है।

मधुमेह नाशक उपयोगी अनुभूत योग

- कटु चिरायता (स्वर्सिया चिरायता), छोटी दूधी (युफोर्विया थिमिलिफोलिया) और भूम्यामलकी (फाइलेन्थस) का पंचाग 100 ग्राम।
- कुटज (होलेरिना एण्टि डिसेन्ट्रिका), छुई–मुई (मर्मोडिका चिरैण्टिया), जामुन (साइजियम क्युमिनि), नीम (एजाडिरक्टा इन्डिका) और कपिकच्छु (मुकुना पुरियेटा) का बीज 100 ग्राम।
- गुडूची (टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया) का तना 100 ग्राम।
- मुलेठी (ग्लिसराईजा ग्लैब्रा) की जड़ 100 ग्राम।
- असगंध (वीठानिया सोमनीफेरा) छुई–मुई (मर्मोर्डिका चिरैण्टिया), हल्दी (करक्यूमा लौंगा), सोंठ (जिंजीबर आफिसिनेल) और कुटकी (पीक्रोराईजा करुवा) की जड़ 100 ग्राम।
- बहेड़ा (टरमिनेलिया बेलेरिका), आंवला (इम्वेलिया आफिसिनेल) का फल 100 ग्राम।
- कत्था 100 ग्राम।
- रसांजन (बरबेरिस ऐरिस्टाटा) का तना 500 ग्राम और बिम्वी (कोक्सीनियां इन्डिका) तथा गुड़मार (जिम्निमा सिलवैन्सटर) के पत्ते 100 ग्राम।

निर्माण विधि

उपरोक्त अनुपात में काष्ठादि औषध द्रव्यों को लेकर बारीक कपड़छन कर चूर्ण तैयार करें। इस चूर्ण में रसौंत को पानी में

घोलकर मिट्टी आदि को छानकर कर पुनः इस जल की तीन बार चूर्ण में भावना देकर चूर्ण को छाया में सुखा लें।

मात्रा – 1 से 3 ग्राम दिन में 3 बार

दो मात्रा का सेवन भोजनोत्तर देना उपयोगी है।

औषध सेवन काल – एक मास तक।

विशेष – खून में शकर कम होने पर बल, काल के अनुसार दिन में एक–दो बार खाना खाने के बाद औषध सेवन करवायें।

संहिताकारों ने शिलाजतु एवं गुग्गुलु का प्रयोग मधुमेह में लिखा है। प्रामाणिक शिलाजतु का उपयोग इस रोग में उपादेय है। इसके अतिरिक्त अन्य अनुभूत एवं शास्त्रीय योग विशेष कर मामज्जक घनवटी, कारवेल्लक घनवटी, शिवागुटिका, शिलाजत्वादि वटी, मध्वारि चूर्ण, वसन्त कुसुमाकर आदि योगों का मधुमेह की अवस्थानुसार लाभ देखा गया है। सभी मधुमेह के रोगियों में पथ्य का विशेष महत्व है। मनोबल को बनाये रखना एवं आसन, प्राणायाम करना लाभकारी है।

आहार-विहार एवं पथ्यापथ्य

पथ्य को स्पष्ट करते हुए चरक ने विस्तृत विवेचन किया है। जो आहारादि द्रव्य पथ (शारीरिक स्त्रोतों) में अपकार या हानि न करते हों, मन को भी प्रिय हो अर्थात् शरीर एवं मन दोनों के लिए हितकारक हो वही पथ्य कहलाता है। इसके विपरीत आहार अपथ्य समझा जाता है। लेकिन परिणाम में हितकर आहार–विहार भी पथ्य कहलाते हैं।

चिकित्सा प्रारम्भ करते समय प्रत्येक चिकित्सक का कर्तव्य है कि निदान, पथ्य और अपथ्य इन तीनों का सम्यक् विचार कर तदुपरान्त चिकित्सा प्रारम्भ करे।

पथ्यापथ्य निर्णय

पथ्य एवं अपथ्य का नियत स्वरूप नहीं है कोई भी वस्तु विभिन्न हेतुओं के कारण अपथ्य या पथ्य के स्वरूप वाली हो जाती है। चरक ने लिखा है–

मात्रा काल क्रियाभूमि देह दोष गुणान्तरम्।
प्राप्य ततद्वि दश्यन्तेते ते भावास्तथातथा।।

अर्थात कोई वस्तु मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह एवं दोष की विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होकर अपथ्य हो जाती है। और इन्हीं कारणों से अपथ्य वस्तु भी पथ्य हो जाती है।

आजकल हम सभी बिना विचार किये मात्र तात्कालिक सुखप्रद आहार–विहारों की आकांक्षा करते हैं। तात्कालिक सुखप्रद आहार आईसक्रीम, जैम, जैली, अचार को भोजन में सम्मिलित किये जा रहे हैं। परिणाम दुःखकर होने से ही हम रोग समूहों से ग्रस्त रहते हैं। स्वाद लोलुपता से हम विभिन्न आहार को संस्कारित करके उपयोग में लेते हैं लेकिन वे विष तुल्य हो जाते हैं।

मधुमेही के आहार में यव (जौ) श्रेष्ठ माना गया है। रोगी को रुचि के अनुसार पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिये।

निदेशक
केन्द्रीय काय चिकित्सा शोध संस्थान
पटियाला

मधुमेह में पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य	अपथ्य
अन्न जौ, चना, गेहूँ, मूंग, मसूर, ज्वार बाजरा	नया अन्न, चावल, मिष्ठान्न, मटर, उड़द तिल
फल एवं मेवे जामुन, आलूबुखारा, आंवला नींबू, बेल, कैथा, गूलर, कच्चा केला, सन्तरा, बादाम, अनार, अखरोट	सेव, अंगूर, केला, आम, अमरूद, खजूर
शाक मेथी, करेला, तोरई, लहसुन, प्याज बैंगन, चौलाई, ग्वारफली, लौकी, बथुआ, मूली, टमाटर, गोभी, सहजन की फली, अदरक	आलू, चुकन्दर, भिण्डी, सीताफल
अन्य गाय का दूध, शहद, हल्दी, अजवायन धनियां, राई, हींग, सोंठ, काली मिर्च, चित्रक	मांस, मछली, अण्डा, दही, तेल, घी, गुड़ सुरापान, धूम्रपान, अधिक नमक
विहार परिभ्रमण, व्यायाम, आसन, प्राणायाम, स्नान	दिवास्वप्न, आस्यासुख, वेगधारण, अतिचिन्तन, मैथुन

गोरा बनाने वाली क्रीम के खतरे

डॉ. सम्यक जैन

आज जब दुनिया के अधिकांश समाजों में गौर वर्ण को सुन्दरता का पैमाना माना जा रहा है, कुछ लोगों को यह प्रश्न लगातार सताता रहता है कि अधिक गोरा दिखने के लिए वे क्या–कुछ करें। इसी वजह से आज बाज़ार ऐसे उत्पादों से पटा पड़ा है जो उपयोगकर्ता की त्वचा को 'सुन्दर' यानी 'गोरा' बनाने का दम भरते हैं। लेकिन इन प्रसाधनों के निर्माता उन्हें उन नुकसानदेह पदार्थो के बारे में नहीं बताते, जिनका इस्तेमाल इन उत्पादों में होता है ओर जो उनकी त्वचा को स्थाई क्षति पहुंचाते हैं। हाइड्रोक्विनॉन एक ऐसा ही रसायन है।

सन् 1992 में इंग्लैण्ड में यह तथ्य रेखांकित हो गया था कि बाज़ार में उपलब्ध चेहरे व त्वचा को गोरा बनाने वाले तीन ब्राण्ड–फेड आऊट, पामर्स स्किन सक्सेस फेड क्रीम तथा एवन वैनिशिंग क्रीम, के घटकों की सूची में हाइड्रोक्विनॉन भी है। सरकार से लोगों द्वारा ऐसी फेस–क्रीमों को प्रतिबंधित किए जाने की मांग के बावजूद ये तीनों ब्राण्ड आज विश्व बाज़ार में धड़ल्ले से बिक रहे हैं।

खबर है कि अब हमारे देश में भी चेहरे को गोरा बनाने वाले तीन ऐसे उत्पाद बिक रहे हैं जो, "आपकी त्वचा की धूप से रक्षा करते हुए मात्र छः से आठ सप्ताह के भीतर आपको काफी गोरा और खूबसूरत बना देते हैं।" इन में से दो तो हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड की 'फेयर एण्ड लवली" लोशन एवं क्रीम है। तथा तीसरी क्रीम है वेल एक्सपोर्टस् प्राइवेट लिमिटेड पॉण्डिचेरी की जड़ी–बूटियों से बनी 'फेयर प्लस' जो "मात्र तीन सप्ताहों में त्वचा को पहले से ज़्यादा गोरा व 'स्वस्थ' बना देने" का वादा करती है। सबसे खराब बात तो यह कि इंग्लैण्ड में बिकने वाली उक्त तीनों क्रीमों के विपरीत इन प्रसाधनों के रैपर पर छपी सूची में उसमें हाइड्रोक्विनॉन होने का पता तब चला जब मलेशिया की एक उपभोक्ता संरक्षण संगठन की प्रयोगशाला में इन क्रीमों की जांच की गई। इन तीनों भारतीय उत्पादों में यह रसायन मौजूद था।

बाज़ार में गोरापन बढ़ाने वाला एक और अमेरिकी ब्राण्ड, एल्डोपेक फोर्ट क्रीम भी उपलब्ध है जो 4 प्रतिशत हाइड्रोक्विनॉन के साथ धूप से त्वचा की रक्षा कर उसे ब्लीच भी करता है। इस क्रीम के साथ की पर्ची में उससे होने वाले विपरीत प्रभावों का उल्लेख करते हुए बाकायदा सूचित किया गया है कि गर्भवती स्त्रियों और बारह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए हाइड्रोक्विनॉन का उपयोग अभी तक निरापद साबित नहीं हुआ है। इसके अलावा इसी पर्ची में यह चेतावनी भी छपी है कि "यदि क्रीम का उपयोग निर्देशों के अनुसार नहीं किया गया तो त्वचा पर कुछ अनचाहे आंगिक–प्रभाव हो सकते हैं"

उक्त अमेरिकी उत्पाद के निर्माता भारत में बिकने वाली उन क्रीमों के निर्माताओं से इस मायने में तो अच्छे हैं कि वे उसके विपरीत प्रभाव के हो सकने और उसमें हाइड्रोक्विनॉन की उपस्थिति की चेतावनी देने के अलावा उसके सही इस्तेमाल का तरीका भी बतलाते हैं तथा उसे चेहरे पर घिसने से मना करते हैं। जबकि दोनों भारतीय निर्माता उपयोगकर्ताओं को चेहरे और शरीर पर उस क्रीम से हौले–हौले 'मालिश करने की सलाह देते हैं।

बहरहाल, इन क्रीमों के उपयोगकर्ताओं को खुद तय करना होगा कि उन्हें अपनी त्वचा को स्वस्थ एवं सुन्दर बनाने के लिए क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए ?

स्रोत फीचर्स

मलेरिया : पहचान और इलाज

मलेरिया भारतवर्ष की एक प्रमुख स्वास्थ्य समस्या है। यह 2000 मीटर से ऊँचे पहाडी क्षेत्रों और कुछ तटीय क्षेत्रों को छोड़ कर सब जगह पाया जाता है। उत्तर प्रदेश में इस शताब्दी के पूवार्ध की सबसे जानलेवा बीमारी रही है। 1950 से 1960 तक यह रोग दब गया था और समझा जा रहा था कि प्रदेश में इसका खातमा हो गया पर 74–75 में इस बीमारी की तेजी से वापसी हुई और कुछ क्षेत्रों में इसका बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। वर्ष 1978 तक लगभग तीन से चार लाख लोग हर साल इसका शिकार होते रहे हैं, अब यह संख्या और अधिक बढ़ गई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान से पूरी दुनिया में हर साल 30 से 50 करोड़ लोग मलेरिया के शिकार होते हैं जिनमें से लगभग 3 करोड़ लोग मर जाते हैं। लगातार बढ़ रहे भूमंडलीय तापमान के कारण भी मलेरिया बढ़ रहा है। मलेरिया वैसे तो किसी को भी हो सकता है पर गर्भवती महिलाओं और बच्चों के लिये यह घातक भी हो सकता है।

मलेरिया प्लाज्मोडियम परजीवी से होता है जो मच्छर द्वारा फैलता है। यद्यपि इस परजीवी के चार प्रकार होते हैं पर प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम और प्लाजमोडियम वाइवेक्स अधिक खतरनाक है।

हमारे देश में मच्छरों की लगभग तीन सौ किस्में पाई जाती हैं जिन्हें एनोफिलीज, क्यूलेक्स और एडिस तीन जातियों में बांटा गया है। आज कल फैल रहा घातक डेंगू ज्वर एडिस इजिप्टी नाम के मच्छर से फैल रहा है। फाइलेरिया और जापानी इन्सिफेलाइटिस (दिमागी बुखार) रोग क्यूलेक्स मच्छर द्वारा फैलते हैं। मलेरिया मादा एनोफिलीज मच्छर के द्वारा फैलता है। एनोफिलीज मच्छर की लगभग 56 प्रजातियां हैं। पर इनमें से केवल दस प्रजातियों द्वारा मलेरिया फैलता है। इनमें से एनोफिलीज कुल्सीफेसीज प्रमुख रोग फैलाने वाली प्रजाति है और 60 से 70 प्रतिशत मलेरिया इसी के कारण होता है। भारतवर्ष के अलावा यमन, ईरान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और श्रीलंका में भी इसके कारण मलेरिया फैलता है।

मलेरिया के लक्षण

मच्छर द्वारा मलेरिया परजीवी मनुष्य के शरीर में पहुँच जाने पर तुरन्त कोई लक्षण दिखाई नहीं देते वरन परजीवी की किस्म के आधार पर वे आठ से तीस दिन में प्रकट होते हैं। रोग के इस तरह दबे रहने की अवधि को इन्क्यूबेशन पीरियड या उद्भवन

मलेरिया के इलाज में जड़ी–बूटी

मलेरिया काफी व्यापक रूप से फैल रहा है। साथ ही चिन्ता का विषय यह भी है कि मलेरिया परजीवी कई दवाइयों का प्रतिरोधी होकर लौटा है। अभी तक स्थिति यह थी कि कुनैन के विरुद्ध प्रतिरोध नहीं देखा गया था। कुनैन एक पेड़ की छाल से प्राप्त होती है। हाल ही में मस्तिष्क–मलेरिया के कुछ ऐसे मामले सामने आए हैं जो कुनैन–प्रतिरोधी हैं। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में ऐसे कई मामले देखे गए हैं। आशंका है कि कुनैन प्रतिरोधी मलेरिया परजीवी की यह समस्या अब अफ्रीका भी पहुंच जाएगी।

दुनिया भर में होने वाले मस्तिष्क मलेरिया के कुल मामलों में से 90 प्रतिशत अफ्रीका में ही होते हैं। हर वर्ष यहां कोई 27 लाख लोग मस्तिष्क मलेरिया के जानलेवा हमले के शिकार होते हैं। यदि कुनैन–प्रतिरोधी मलेरिया का प्रकोप हुआ तो इस संख्या के बढ़कर 70 लाख हो जाने की सम्भावना है। और हमारे पास इसके खिलाफ कोई दवा भी न होगी। अलबत्ता प्रकृति ने इस संदर्भ में हमारी मदद की है।

एक चीनी जड़ी–बूटी से प्राप्त आर्टीमेथर नामक औषधि मस्तिष्क मलेरिया के खिलाफ कारगर पाई गई है। अफ्रीका में इस औषधि के प्रयोग भी सफलतापूर्वक किए गए हैं। मस्तिष्क मलेरिया के रोगियों को बचाने में आर्टीमेथर, कुनैन के मुकाबले कहीं ज्यादा कारगर पाई गई है। इसके अलावा आर्टीमेथर के साईड असर भी नहीं होते हैं।

आर्टीमेथर सही समय पर आई है। आजकल दवा कम्पनियां मलेरिया जैसी मामूली बीमारियों की दवाई के विकास में कोई रुचि नहीं ले रही हैं। खासतौर पर गर्म देशों की बीमारियों में तो उनकी कोई दिलचस्पी ही नहीं है आर्टीमेथर को भी कोई दवा कम्पनी हाथ नहीं लगाना चाहती क्योंकि एक पारम्परिक प्रणाली की जानी–मानी औषधि का पेटेन्ट भी नहीं मिलता। यानि कोई भी कम्पनी इस औषधि पर एकाधिकार का दावा नहीं कर सकती।

आर्टीमेथर वैसे एक महंगी दवा है व कुनैन की तुलना में इसकी लागत बहुत ज्यादा हैं। मगर कुनैन का उपयोग करते वक्त लगातार खून की जांच आदि का खर्चा आता है जो इस दवा के लिये जरूरी नहीं है। आर्टीमेथर की कीमत कुनैन से करीब दुगुनी पड़ेगी। अब सरकारी सेवाओं के टूटने की हालत में परिवारों को दवाई की कीमत स्वयं ही वहन करना पड़ती है। वैज्ञानिकों का विचार है कि शायद आर्टीमेथर से मिलती–जुलती दवाइयां तैयार की जा सकें, जो कारगर भी हों और सस्ती भी।

मच्छर भगाऊ नीम

मक्खियां, मच्छर, काकरोचों और अन्य कीट पतंगो को भगाने वाले तेल, क्रीम, अगरबत्ती, मैट आदि बाजार में बिक रहे हैं। इनमें रासायनिक पदार्थो का प्रयोग किया जाता है जो लम्बे समय तक प्रयोग करने से पर्यावरण और मनुष्य के स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाते हैं। नीम के कीटनाशक गुणों से सभी परिचित हैं। नीम मनुष्यों तथा पर्यावरण के लिये हानिकारक नहीं है और एक समय के बाद इसका प्रभाव स्वयं नष्ट हो जाता है।

नीम पूरे देश में उगती है इसलिये नीम का तेल आसानी से मिल जाता है। इसे नीम के बीजों से बहुत साधारण कोल्हू से गांव–गांव में निकाला जा सकता है। नीम का तेल कई प्रकार से मच्छर भगाने के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

सरसों या नारियल के तेल में 2 प्रतिशत नीम का तेल मिला कर शरीर के खुले भागों पर लगाने से मच्छर रात भर दूर रहते हैं।

पुरानी मैट या उसी आकार के गत्ते के टुकड़े नीम के तेल में भिगो कर सुखा लें। यह मैट बिजली की मशीनों पर प्रयोग की जा सकती हैं और रासायनिक बाजारू मैट के समान ही प्रभावी हैं। मिट्टी के तेल में 2–3 प्रतिशत नीम का तेल मिला कर लगभग 100 मि.ली. क्षमता वाले टीन के लैम्प में भर लें तथा इसकी चिमनी निकाल दें। इस लैम्प को जलाने से नीम के धुएं के कारण रात भर मच्छर दूर रहते हैं।

पानी में भी 2 प्रतिशत नीम का तेल अच्छी तरह फेंटकर शरीर के खुले भागों पर लगाया जा सकता है।

अवधि कहते हैं। रोगी को शुरुआती तौर पर सिर दर्द, बदन दर्द, थकावट, बेचैनी, उबकाई और उल्टी हो सकती हैं। यह स्थिति एक से दो दिन तक रह सकती है। इसके बाद रोगी को तेज जाड़ा और कंपकपी लग कर बहुत तेज बुखार आता है जो 102 डिग्री या उससे ऊपर भी जा सकता है। बुखार की स्थिति में रोगी की त्वचा लाल हो सकती है और वह बड़बड़ाने भी लग सकता है। कुछ घंटे बुखार रहने के बाद बहुत तेज पसीना सारे शरीर से छूटता है और बुखार उतर जाता है संक्रमण किस प्रकार का है, इसके आधार पर 48 से 72 घंटे के बाद फिर इसी तरह जाड़ा देकर बुखार और पसीना छूटता है। यदि ठीक से इलाज न किया जाय तो इसी अंतर पर बार–बार रोग का हमला होता रहता है। बुखार का कभी–कभी दिमाग पर भी प्रभाव पड़ता है जिससे बेहोशी और शरीर में ऐंठन भी हो सकती है। मलेरिया से शरीर में खून की कमी और यकृत तथा तिल्ली में सूजन भी हो सकती है। रोगी की आयु, रोग प्रतिरोधक क्षमता, पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति का रोग की गंभीरता पर प्रभाव पड़ता है। बच्चों और गर्भवती महिलाओं में रोग अधिक गंभीर और घातक भी हो सकता है। गर्भवती महिलाओं में मलेरिया के कारण गर्भस्थ शिशु के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, ऐसी स्थिति में समय से पूर्व प्रसव या गर्भपात भी हो सकता है।

मलेरिया की चिकित्सा : मलेरिया के लक्षण दिखाई देने पर तुरन्त नजदीक के स्वास्थ्य केन्द्र अथवा कुशल वैद्य या डाक्टर से संपर्क करना चाहिये। बुखार की अवस्था में खून का नमूना लेकर जाँच करवाने से मलेरिया का पक्का निदान हो जाता है। बेहोशी या शरीर में ऐंठन होने पर रोगी को तुरन्त नजदीकी अस्पताल ले जाना चाहिये क्योंकि यह स्थिति खतरनाक हो सकती है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार क्लोरोक्वीन, प्राइमाक्वीन, सल्फा पाइरीमीथमीन आदि औषधियां दी जाती हैं। बुखार कम करने की औषधियां भी दी जाती हैं। मलेरिया के काफी रोगियों में अब क्लोरोक्वीन के प्रति प्रतिरोध विकसित होता जा रहा है अर्थात अब इस दवा का उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। औषधि प्रतिरोधी मलेरिया की नई औषधियां मेफ्लोक्वीनीन, आर्टिमिसिनिन आदि खोजी जा रही हैं। क्लोरोक्वीन मलेरिया प्रभावित क्षेत्रों में रोग से बचाव के लिये भी दी जाती रही है। सभी आधुनिक औषधियां डाक्टर की सलाह से ही लेनी चाहिये तथा इन्हें खाली पेट कभी नहीं लेना चाहिये। गर्भावस्था में मलेरिया को हमेशा खतरनाक समझना चाहिये तथा बिना डाक्टर की सलाह के दवा कतई नहीं देनी चाहिये क्योंकि इससे गर्भपात भी हो सकता है। कई मायनों में मलेरिया से बचाव करना इसके इलाज से बेहतर है अतः बचाव का प्रयास जरूर करना चाहिये।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

मलेरिया को आयुर्वेद में विषम ज्वर कहते हैं। सुदर्शन चूर्ण मलेरिया की सर्वोत्तम औषधि मानी जाती हैं। इस चूर्ण का एक चम्मच शहद के साथ दिन में तीन बार देना चाहिये। चिरायता सुदर्शन चूर्ण का मुख्य घटक है अतः चिरायता चूर्ण का एक चम्मच शहद के साथ तीन बार या उसके काढ़े के 6 चम्मच दिन में तीन बार लें।

गुडुची का भी मलेरिया की चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। गुडुची की पत्तियों

➔

मलेरिया प्रभावित कुछ क्षेत्र ऐसे भी होते हैं जहां छिड़काव व अन्य तरीके अपनाने में बहुत दिक्कत होती है। इन इलाकों में अधिक बरसात और जल भराव वाले क्षेत्र, जंगली क्षेत्र या ऐसे दुर्गम क्षेत्र

➔

के ताजे रस के 6 चम्मच दिन में तीन बार दिये जा सकते हैं।

कुटज चूर्ण भी मलेरिया में बहुत लाभदायक है। इसका भी एक चम्मच चूर्ण दिन में तीन बार लें।

उपरोक्त आयुर्वेदिक औषधियां रोग दूर करने के साथ–साथ शरीर को मजबूत भी बनाती हैं। इसलिये जब तक बुखार थोड़ा भी रहे ये औषधियां लेते रहें।

आहार विहार : रोग के आक्रमण के समय और ठीक होने के बाद भी काफी समय तक भूख ठीक से नहीं लगती। अतः मरीज को जबरदस्ती भोजन नहीं करना चाहिये। सब्जियों के सूप, जौ का पानी, दूध लेना लाभदायक है। हरी पत्तेदार सब्जियां, मेथी और सोया के पत्ते, अदरक और लहसुन रोगियों के लिये बहुत लाभदायक है। मलेरिया पीड़ित को खूब पेट भर भोजन करने तथा अतिव्यायाम से बचना चाहिये। रोगी को मच्छरदानी का प्रयोग जरूर करना चाहिये। मलेरिया रोगी को यथोचित विश्राम करना चाहिये पर दिन में सोना नहीं चाहिये।

पाइरीथ्राइड लगी मच्छरदानी

शामिल होते हैं जहां पहुँचना कठिन होता है। इन क्षेत्रों में मच्छरों से बचने का सबसे सरल और सस्ता उपाय मच्छरदानी का इस्तेमाल है। मच्छरदानी का इस्तेमाल बहुत पुराने समय से ही मच्छरों और कीड़ों से बचने के लिये किया जाता रहा है पर इससे पूरी सुरक्षा नहीं मिल पाती। भूखे मच्छर बाहर इन्तजार करते रहते हैं। और मौका मिलते ही खून चूसने लगते हैं इसके अलावा मच्छरदानी के अन्दर रह गये मच्छर तो रात भर काटते ही रहते हैं। यदि मच्छरदानी को पाइरीथ्राइड से शोधित कर लिया जाय तो इसके संपर्क में आने वाले मच्छर मर जाते है।

पाइरीथ्राइड क्राइसैन्थेमम सिनेरीफोलियम पौधे में प्राकृतिक रूप से पाये जाते रहे हैं पर अधिक मात्रा में प्रयोग करने के लिये इन्हें औद्योगिक पैमाने पर संस्लेषित किया जाता है। पाइरीथ्राइड के घोल में मच्छरदानी को भिगो कर सुखा लिया जाता है। इनके घोल को पानी में पतला करके प्रयोग किया जाता है।

शोधित मच्छरदानी के संपर्क में आने पर मच्छर मर जाते हैं। परम्परागत कीटनाशकों की अपेक्षा इसकी कम मात्रा की जरूरत होती है। यदि मच्छरदानी को धोया न जाय तो एक बार शोधित करने के बाद यह 6 महीने तक प्रभावी रहता है। प्राइरीथ्राइड मनुष्य और अन्य स्तनधारी प्राणियों के लिये जहरीला नहीं है। यह गंधहीन होता है और कपड़ों पर कोई धब्बे आदि नहीं छोड़ता। पाइरीथ्राइड जूँ, खटमल, काकरोच और चीटियों को भी नष्ट करने में मदद करता है। यद्यपि यह जहरीला नहीं है फिर भी घोल बनाते समय सुरक्षा के लिहाज से हाथों में रबर के दस्ताने पहन लेने चाहिये या पोलीथीन के थैले लपेट लेने चाहिये। इसके बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये आप मलेरिया विभाग या मलेरिया शोध संस्थान से संपर्क कर सकते हैं।

पृष्ठ 18 का शेष

दूर होकर शरीर में ताजगी महसूस होती है। पैरों की रक्तवाहिनियों का व्यायाम होकर उनके दोष दूर होते हैं। शारीरिक सन्तुलन की क्षमता बढ़ जाती है। मेरुदण्ड के खिंचाव से उसके विकार नष्ट होते हैं। मेरुदण्ड से निकलने वाली नाड़ियों को व्यायाम मिलता है कमर और छाती की पेशियां और पिंडली तथा जंघा की पेशियों पर खिंचाव पड़ने से उनका व्यायाम हो जाता है। व्यावहारिक रूप से पैरों के पंजों से लेकर सारे शरीर पर ही इस आसन का प्रभाव पड़ता है।

ताड़ासन से पाचन और मलत्याग की क्रियाओं में सुधार होता है। फेफड़े और हृदय मजबूत होते हैं। वृद्धावस्था में शरीर में सन्तुलन बनाये रखने तथा हाथ–पैरों की कमजोरी को दूर करने में यह आसन बहुत उपयोगी है।

शरीर की लम्बाई बढ़ाने में यह आसन सहायक है। अतः किशोर और युवाओं को इसका अभ्यास लम्बाई–बढ़ाने की दृष्टि से अवश्य करना चाहिए। कुछ योग शिक्षक कहते हैं कि अधिक उम्र हो जाने पर भी यह आसन कद बढाता है। वृद्धावस्था में शरीर शिथिल होने से लम्बाई कम होती जाती है परन्तु ताड़ासन करने पर यह शिथिलता नहीं आ पाती। यह आसन अत्यन्त सरल है। इसे कहीं भी किया सकता है। इसके लाभ भी बहुत हैं। कृपया स्वयं परीक्षण कर लाभ उठायें।

मच्छरों का जैविक नियन्त्रण

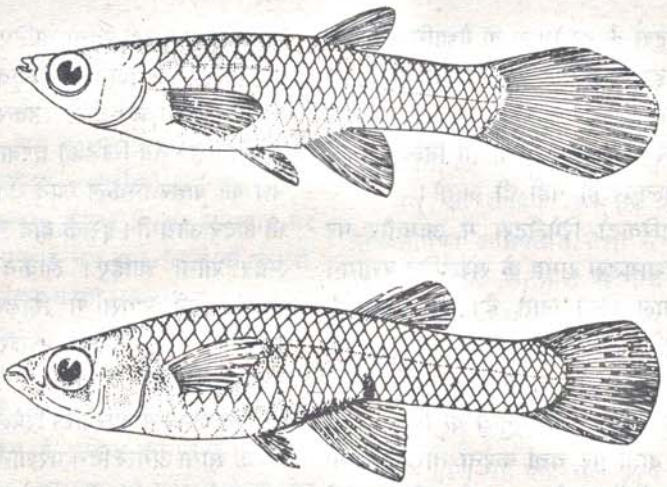

लार्वाभक्षी मछलियां

मलेरिया के नियन्त्रण के लिये मच्छरों का नियन्त्रण और विनाश जरूरी है। पचास के दशक से ही डी.डी.टी. और गैमक्सीन आदि कीटनाशकों का बड़े पैमाने पर छिड़काव करके यह समझ लिया गया कि अब मच्छरों पर विजय प्राप्त कर ली गयी परन्तु जल्दी ही मालूम हुआ कि मच्छरों ने इन कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोध क्षमता विकसित कर ली है। इसके अतिरिक्त कीटनाशक पर्यावरण प्रदूषण के कारण भोजन, पानी और हवा से मनुष्य के शरीर में जाकर नुकसान पहुँचाते हैं। इसी कारण मच्छरों को नष्ट करने के लिये नये–नये तरीकों की खोज पर मजबूर होना पड़ा। यद्यपि शुरू से ही मच्छरों पर जैविक नियन्त्रण की जानकारी रही है पर इन पर अधिक जोर नहीं दिया गया। वैसे तो मकड़ी और छिपकिली आदि जानवर वयस्क मच्छरों को खा जाते हैं पर उन्हें जैविक नियन्त्रण के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता। मच्छरों पर जैविक नियन्त्रण के लिये इनके पानी में रहने वाले लार्वा को नष्ट करना सबसे अच्छा उपाय है। इसके लिये लार्वाभक्षी मछलियों और लार्वा मारने वाले बैक्टीरिया का प्रयोग किया जा रहा है। लार्वा को खाने वाले फफूंद, घोंघे और अकशेरूकी प्राणियों पर भी शोध कार्य चल रहा है पर उसे पूरा होने में थोड़ा समय लगेगा।

लार्वाभक्षी मछलियां

यद्यपि बहुत सी मछलियां मच्छरों के लार्वा को खा जाती हैं परन्तु बड़े पैमाने पर इनके प्रयोग में कुछ समस्यायें आती हैं। गप्पी और गैम्बासिया मछलियां इस काम के लिये आदर्श हैं। इन मछलियों का जीवन काल 3 से 5 साल तक है। आकार में ये मछलियां छोटी होती हैं, खूब बच्चे देती हैं और पानी की गंदगी और प्रदूषण को काफी हद तक झेल लेती हैं। एक मछली रोज तीन चार सौ लार्वा खा जाती है। ये मछलियां मनुष्य के लिये अखाद्य हैं इसलिये कोई इनका शिकार भी नहीं करता। गप्पी मछली तालाबों, गड्ढों, नाली, सीवर, में आराम से रह सकती है पर बहुत अधिक औद्योगिक कचरा इनके लिये घातक होता है।

लार्वा मारने वाला बैक्टीरिया

लार्वा मारने वाले बैक्टीरिया बैक्टीसाइड (बैसिलस थूरिनजिएनसिस वर इसरालियेनसिस सीरोटाइप एच–14) की खोज की गई है। यह एनोफिलीज और क्यूलेक्स दोनों प्रकार के मच्छरों पर तो प्रभावी है ही डेंगू फैलाने वाले एडिस इजिप्टी पर भी बहुत अधिक प्रभावी है। बैक्टीसाइड मनुष्यों, जानवरों, वातावरण यहां तक कि लाभदायक कीट पतिंगों और केंचुओं के लिये पूरी तरह सुरक्षित है। पाउडर के रूप में इसे दो साल तक सामान्य तापक्रम पर रखा जा सकता है। इसे दवा छिड़कने वाली मशीन से छिड़का जा सकता है। छिड़कने के 24 घंटे के अन्दर यह मच्छरों के लार्वा को नष्ट कर देता है। वातावरण और छिड़काव की मात्रा के आधार पर बैक्टीसाइड 7 से 28 दिन तक प्रभावी रहता है। इसे मशीन से 5 किलो प्रति हेक्टर की दर से छिड़का जाना चाहिये। घोल छिड़कने के तुरन्त पहले बनाना चाहिये और हर बार प्रयोग के लिये ताजा घोल ही इस्तेमाल करना चाहिये। यद्यपि अब तक के शोध से मच्छरों के लार्वा के अतिरिक्त अन्य प्राणियों पर बैक्टीसाइड के हानिकारक प्रभाव नहीं पाये गये हैं फिर भी पीने वाले पानी पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

बैक्टीसाइड का छिड़काव

लार्वाभक्षी मछलियां और बैक्टीसाइड प्राप्त करने के लिये मलेरिया विभाग अथवा मलेरिया शोध संस्थान, 22–शाम नाथ मार्ग नई दिल्ली – 54 से संपर्क कर सकते हैं।

कितनी सुरक्षित हैं मास्किटो मैट?

आजकल बाजार में कोई आधा दर्जन किस्म के 'मास्किटो रिपेलैंट्स' बिकते हैं। अनुमान है कि भारत के शहरी इलाकों में एक तिहाई आबादी इनका उपयोग करती है। इस लिहाज से मास्किटो रिपेलैंट्स की सालाना बिक्री तीन–चार करोड़ रुपये से कम की नहीं है पर मास्किटो रिपेलैंट्स इस्तेमाल करने वाले लोग इनके बारे में कितनी वैज्ञानिक जानकारी रखते हैं? आम जानकारी यह है कि बिस्तर के पास इन्हें लगाकर बस सो जायें। लेकिन इस्तेमाल का यह तरीका निरापद नहीं है। मास्किटो रिपेलैंट्स के विज्ञापन सही और पूरी जानकारी देने का उत्तरदायित्व नहीं निभाते। निर्माता कंपनी और विज्ञापन एजेंसी मिलकर एक आकर्षक विज्ञापन तो तैयार कर लेते हैं लेकिन मास्किटो रिपेलैंट्स के इस्तेमाल के वैज्ञानिक तरीके और इसमें प्रयोग होने वाले कीटनाशी रसायन से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव के बारे में जानकारी या तो बिल्कुल कम या बिल्कुल ही नहीं दी जाती।

मास्किटो रिपेलैंट्स में आमतौर पर पायरिथ्रायड्स समूह के संश्लेषित रसायन इस्तेमाल किये जाते हैं। इस समूह में डी–एलिथरिन और डी–ट्रांसएलिथरिन जैसे कीटनाशी होते हैं। इन कीटनाशियों की कार्यशैली और मनुष्य के लिए सुरक्षा जैसी बातों पर चर्चा करना तो दूर, कभी विज्ञापनों में इनकी सूचना भी नहीं दी जाती कि मास्किटो रिपेलैंट्स के इस्तेमाल का सही तरीका क्या है ? सोने से पहले कमरे की खिड़की दरवाजे बंद कर लें और तब मैट या कॉयल चालू करें। कमरे में कोई मनुष्य मौजूद नहीं रहना चाहिए। आधा घंटे बाद कमरे में मौजूद वाष्पीकृत कीटनाशी के प्रभाव से मच्छर ढीले पड़कर मरना शुरू हो जाते है। तब खिड़की दरवाजे खोलकर गंध को बाहर निकल जाने दें। ताजा हवा भी अंदर आयेगी। इसके बाद ही मनुष्य को अंदर सोना चाहिए। लेकिन गर्मी और बरसात की उमस में खिड़की दरवाजे खोलकर सोने पर कुछ मच्छर फिर अंदर घुस सकते हैं।

बंद कमरे में मास्किटो रिपेलैंट मैट चालू करके सोना अगले दिन परेशानी का कारण बन जाता है। सुबह सिर भारी होता है। और शरीर के खुले हिस्से की चमड़ी पर जलन और खुजली शुरू हो सकती है।

स्वास्थ्य परंपराओं पर महानिबंध

स्वास्थ्य की स्थानीय परंपराएं :पृष्ठ सं. 108 मूल्य–रु. 40

भारतवर्ष के विभिन्न भागों में शताब्दियों से प्रचलित स्वास्थ्य की कुछ सशक्त परंपराओं का सर्वेक्षण व उनका मूल्यांकन इस पुस्तक में किया गया है। इन परंपराओं के वैज्ञानिक आधार और वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता एवं संभावनाओं के साथ–साथ आयुर्वेद के कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों के संदर्भ व प्राविधिक शब्दों का विवरण भी पुस्तक के महत्व को बढ़ाता है।

पारंपरिक चिकित्सा में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य

खण्ड–1 पृष्ठ सं. 84, मूल्य रु. 45

हमारे देश में प्रचलित स्वास्थ्य परंपराओं में संभवतः सबसे प्राचीन और समृद्ध परंपरा दाइयों की रही है जो आज भी काफी सुदृढ़ है। इस परंपरा के वर्तमान आधार पर एक देशव्यापी सर्वेक्षण लोस्वापसंस व चेतना ने अनेकों स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग से किया था। इसी पर आधारित इस परंपरा में गर्भधारण एवं गर्भ की पहचान से लेकर गर्भिणी परिचर्या एवं कुछ विशिष्ट व्याधियों तथा उनके उपचार का विवरण भी इस पुस्तक में सविस्तर दिया गया है।

खण्ड–2 पृष्ठ सं. 88, मूल्य रु. 45 (प्रेस में)

उपरोक्त सर्वेक्षण पर आधारित इस पुस्तक में शिशु जन्म के पश्चात सूतिका एवं शिशु की परिचर्या के बारे में विस्तार से विवरण दिया है।

आहार एवं पोषण के आयुर्वेदीय सिद्धांत

खण्ड–1 पृष्ठ सं. 128, मूल्य रु. 50

इस पुस्तक में आहार एवं पोषण के मूल सिद्धांतों पाचन क्रिया, अग्नि, प्रकृति एवं ऋतु के अनुसार आहार, सेवन विधि, पथ्य–अपथ्य व विशेष पदार्थो आदि का सचित्र वर्णन है। पुस्तक में निघंटुओं में उपलब्ध ज्ञान के उपयोग की विधि और उसके आधार पर पदार्थो का विभिन्न गणों में वर्गीकरण भी किया गया है।

कृपया क्रयादेश जीवनीय सोसायटी, लखनऊ के पक्ष में ड्राफ्ट सहित या मनी आर्डर द्वारा निम्न पते पर भेजें

जीवनीय सोसायटी, ई–III/249, सेक्टर एच, अलीगंज, लखनऊ–226024

टीका बनने तक डेंगू से सावधानी जरूरी

मोहन थपलियाल

डेंगू बुखार को आम बोलचाल की भाषा में हड्डीतोड़ बुखार कहा जाता है। मनुष्यों में यह बुखार खासतौर पर एडीस एजिप्ती नामक मच्छरों के काटने से होता है। यह घरेलू मच्छर है जो आमतौर पर कूलरों, टीन के बड़े ड्रम, फूलों के गमलों, घर के आसपास की नालियों में साफ पानी में अंडे देता है। ये मच्छर साधारण मच्छरों से आकार में कुछ बड़े और काले–भूरे रंग के होते हैं। एडीस एजिप्ती मच्छर रात के बजाय दिन में अधिक काटते हैं।

डेंगू का बुखार आने पर जोड़ों में तेज दर्द होता है, इसी के साथ मांसपेशियों में भी कुछ दिनों तक दर्द बना रहता है। मरीज तेज सिरदर्द भी महसूस करता है, उसकी आंखों से पानी टपकता है और गले में दर्द होने के अलावा बदन में खुजली और खसरे जैसे दाने उभर आते हैं। एक बार बुखार शुरू होने पर दो–तीन दिन के अंतराल पर यही लक्षण फिर दुबारा प्रकट होने लगते हैं।

डेंगू बुखार का पिछला इतिहास बताता है कि पहले इस रोग से बहुत कम लोगों की जानें जाती थी, हालांकि बुखार के कारण मरीज को काफी परेशानी और व्याकुलता झेलनी पड़ती थी। इस समय जो डेंगू – दिल्ली और अन्य शहरों में महामारी के रूप में फैला है वह पिछले डेंगू की अपेक्षा काफी भयावह है। वर्तमान डेंगू ज्वर में हेमोरेजिक (रक्तस्राव) फीवर चढ़ रहा है, अंदरूनी रक्तस्राव हो रहा है। पहले इस प्रकार का डेंगू सिर्फ कुछ बच्चों को ही प्रभावित करता था, लेकिन इस समय जो डेंगू फैला है, उससे बच्चे, वयस्क और बूढ़े सभी समान रूप से प्रभावित हो रहे हैं। अकेले दिल्ली शहर में अक्टूबर 96 के अंत तक इस रोग से 200 से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी थी। दिल्ली के अलावा गाजियाबाद, मेरठ, बरेली और लखनऊ आदि शहरों में भी यह रोग फैला है और कई लोगों को मौत की नींद सुला चुका है।

डेंगू का प्रकोप खासकर उष्ण एवं समशीतोष्ण कटिबंधीय देशों में ही पाया जाता है। 26° सेंटीग्रेड से नीचे तापक्रम होने पर इसका मच्छर नहीं पनप पाता है। अभी तक डेंगू बुखार को नियंत्रण में लेने के लिए कोई टीका इजाद नहीं हुआ है। इसलिए डेंगू का बुखार आने पर यदि शीघ्र परीक्षण द्वारा यह पता चल जाय कि रोगी को डेंगू बुखार है तो उसे खून चढ़ाकर बचाया जा सकता है। डेंगू के मरीज को जीवनदान देने के लिए करीब तीन से चार यूनिट खून दिया जाना जरूरी है। आजकल विशेष प्रकार की मशीनों द्वारा रक्त से प्लेट्लेटस अलग करके उन्हें अलग से रोगी को चढ़ाकर त्वरित चिकित्सा की जा सकती है। प्लेटलेटस की संख्या गिनने में अभी तक बहुत समय लग रहा है। अतः डाक्टरों का सुझाव है कि इसकी गिनती के लिए स्वचालित व्यवस्था होनी चाहिए। इधर दक्षिण दिल्ली के एक निजी क्लिनिक में प्लेटलेटस गिनने की स्वचालित प्रणाली आ गयी है, जिससे बिना किसी विलम्ब के अत्यधिक सटीक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

डेंगू का विषाणु तब अत्यधिक घातक सिद्ध होता है जब वह मेरुदण्ड में स्थित अस्थि मज्जा (बोन मैरो) के साथ मिल कर रक्त के लाल, श्वेत कणों और प्लेटलेट्स और प्लाज्मा को निष्क्रिय बना डालता है। ऐसी स्थिति में शिराओं को ताजा खून नहीं मिल पाता है फलतः प्लेट्लेट्स की संख्या में भारी कमी होने लगती है, जिसके चलते मरीज को रक्तस्राव होने लगता है और अंततः मरीज की मृत्यु हो जाती है। ऊपर के तमाम लक्षणों के अलावा डेंगू में कभी–कभी उल्टी, बेचैनी और अत्यधिक प्यास भी महसूस होती है।

डेंगू के विषाणु चार प्रकार के होते हैं, इसलिए इसका टीका बनाने में वैज्ञानिकों को काफी जटिलता का सामना करना पड़ रहा है। पिछले कई वर्षो से अमरीका में डेंगू के टीके पर शोधकार्य चल रहा है। मालूम हुआ है कि अमरीका के डाक्टरों ने इसका टीका विकसित कर लिया है और इस समय उसका आदमियों पर दूसरा परीक्षण चल रहा है। डाक्टरों का कहना है कि टीका बनाने के काम में इसलिए मुश्किलें आ रही हैं क्योंकि तैयार टीके में इसके चारों प्रकार के विषाणुओं का प्रतिरोधी असर प्राप्त होना जरूरी है। अन्यथा जब तक ऐसा सभव नहीं हो जाता है, तब तक कोई भी दूसरा विषाणु बीमारी पैदा कर सकता है।

भारत में इस समय जो बुखार फैला है, उससे बचने के लिये डाक्टरों का प्रयास हे कि डेंगू के चारों प्रकार के विषाणुओं को मारने वाला टीका विकसित किया जाये, तभी यह रोग जड़ से मिट सकेगा। लखनऊ के किंग जार्ज मेडिकल कालेज में भी डेंगू के वायरस पर 1968 से शोधकार्य चल रहा है। यहां के डाक्टरों का कहना है कि सीमित संसाधन होने के कारण शोधकार्य में विलम्ब हो रहा है। भारत में डेंगू के विषाणु का पता 1942 में कलकत्ता में चला था। भारत के अत्यधिक शीतल स्थानों जैसे हिमालय व कश्मीर क्षेत्र में डेंगू का असर नहीं देखा गया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के सौ देश ऐसे हैं, जिनमें डेंगू कभी भी महामारी का रूप ले सकता है। इन राष्ट्रों में अधिकांश तीसरी दुनिया के गरीब राष्ट्र हैं, जिनमें करीब विश्व की

शेष पेज 39 पर

डेन्यू बुखार

डेन्यू वायरस से उत्पन्न होने वाला तथा 6–7 दिन रहने वाला ऐसा ज्वर है जो कि अन्य वायरस से उत्पन्न होने वाले बुखारों की तरह दिखता है परन्तु महामारी की तरह फैलने पर अंदरूनी रक्तस्राव सम्बन्धी उपद्रवों के कारण व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है। इस बुखार में सन्धियों, सन्धियों के पास की अस्थियों, कमर एवं सिर में तेज दर्द होता है जिससे इसे ब्रेकबोन फीवर या हड्डीतोड़ बुखार भी कहते हैं। संसार के विभिन्न भागों में यह महामारी के रूप में फैलता रहा है। एशिया के देशों में विशेषकर दक्षिण पूर्व और मध्य पूर्व के देशों एवं भूमध्य सागरीय देश यूनान, मिस्र तथा दक्षिणी अमेरिका में भी इसका प्रसार देखा गया है। 1871 से 1875 तक भारत में भी इस रोग ने भयानक रूप धारण किया था।

उत्पादक कारण

गरीब, झोपड़पट्टी में रहने वाले, सतुलित आहार प्राप्त न करने वाले गरीब तथा मध्यम श्रेणी के लोगों में रोग प्रतिकारक क्षमता अल्प होने से इसका आक्रमण शीघ्र हो जाता है। इस रोग का कारण एक सूक्ष्म, वायरस है तथा इसको फैलाने वाला मच्छर ईडिस इंजिप्टी है। यह एक प्रकार का घरेलू मच्छर है जो सीलन भरे स्थानों में रहता है। यह पानी इकट्ठे होने वाले गड्ढों में तथा घर में कूलर, गमलों आदि में पानी रहने पर वहां अंडे देता है। सामान्यतः मच्छर में डेंगू बुखार का वायरस नहीं होता परंतु जब यह मच्छर डेंगू बुखार से पीड़ित व्यक्ति को काटता है तब उसके रक्त में डेंगू का वायरस चला जाता है। मच्छर के शरीर में वायरस वृद्धिकर ग्यारह दिन में परिपक्व हो जाता है। ऐसा मच्छर जब किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तब उस व्यक्ति के खून में वायरस चला जाता है और 5 से 9 दिन के संचयकाल में वृद्धि को प्राप्त कर उस व्यक्ति को डेंगू उत्पन्न करता है।

साधारण लक्षण

बुखार आने के पूर्व हाथ पैरों में दर्द होने लगता है और व्यक्ति बेचैन होकर उसे बुखार सा लगने लगता हैं। डेंगू का आक्रमण अचानक होता है और व्यक्तियों को ठंड तथा कंपकंपी के साथ तापक्रम में 103 से 105 तक वृद्धि हो जाती है। इसके साथ तेज सिर दर्द एवं नेत्र के पीछे तेज दर्द होता है। हाथ पैरों के दर्द के साथ जोड़ों में विशेषकर कमर में तीव्र पीड़ा उठती है। रोगी अशक्त हो जाता है, भूख, प्यास, नींद लगी रहती है और चित्त अवसाद से भर जाता है। रोगी में निम्न विशिष्ट लक्षण पाये जाते हैं।

तापक्रम तेजी से ठंड के साथ बढ़ता है और 103° से 106° तक चला जाता है। रोगी का जी मचलाना, कभी वमन, कभी कब्ज और कभी पतले दस्त भी होते हैं।

तेज बुखार 3–4 दिन रहता है। और तब अचानक ही बुखार उतर जाता है।

हाथ पैरों की अस्थियों में विशेषकर मांसपेशी के निवेश स्थल पर संधियों में, सिर में एवं नेत्रों के पीछे तीव्र पीड़ा होती है जो साधारण दर्दनाशक गोली लेने पर भी कम नहीं होती।

तापक्रम उतरकर पुनः 12 घंटे से 72 घंटे के भीतर ही अचानक फिर बढ़कर 105° तक चला जाता है। इस बार बुखार के साथ होने वाले आनुषंगिक लक्षणों में कमी रहती है। दर्द, बेचेनी रहती है और नींद नहीं आती है। कभी कभी बुखार एक बार ही एक सप्ताह तक चढ़ता है। अचानक उतरकर दुबारा नहीं चढ़ता।

ज्वर के प्रारंभ से ही अथवा एक दिन बाद मुख रोमंतिका के दानों के निकलने की तरह लाल हो जाता है और मुख पर

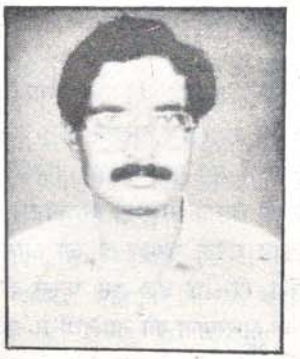

डा. प्रमोद मालवीय, लखनऊ

छोटे–छोटे दाने भी निकल सकते हैं। तीन चार दिन बाद हलके लाल दाने हाथ पैरों के पृष्ठ भाग पर कमर एवं कुहनी तक निकल आते हैं। ये दाने दबा देने पर लुप्त हो जाते हैं। दानों में बाद में खुजली भी हो सकती है और चमड़े पर पपड़ी भी निकल आती है।

नाड़ी की गति प्रारंभ में तेज रहती है परंतु तीसरे दिन से गति में ताप के परिप्रेक्ष्य में मंदता रहती है। रक्तचाप भी कम हो जाता है। संपूर्ण शरीर की विशेषकर बगलों की लसीका ग्रन्थियों में वृद्धि हो जाती है तथा दबाने से उनमें पीड़ा भी होती है।

बेचैनी, अवसाद, अनिद्रा के साथ–साथ रोगी अशक्त भी हो जाता है।

रोग परीक्षण

रोगी के रक्त परीक्षण करने पर श्वेतकणों की संख्या कम पायी जाती है। बहुखण्डक पालीमार्फ कोषों की संख्या में कमी, उनमें विषैले कणों की उपस्थिति एवं लिम्फोसाइट कोषों की अल्पवृद्धि देखी गई है।

कुछ रोगियों में शरीर में कहीं भी रक्तस्राव की प्रवृत्ति देखी गई है और उनमें नकसीर फूटना, हाथ पैरों पर चकत्ते आदि देखे गये हैं। इन रोगियों के रक्त परीक्षण में प्लेटलेट की संपूर्ण संख्या कम हो जाती है। हाथ अथवा पैर पर टोर्निकी बांधने पर कुछ समय बाद वहां रक्त स्राव के धब्बे आ

जाते हैं तो इस परीक्षण को धनात्मक कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि शरीर में रक्तस्राव कहीं भी हो सकता है। काम्प्लिमेंट फिक्जेशन टेस्ट धनात्मक हो सकता है।

इस रोग के ज्वर की तुलना एवं सापेक्ष निदान इन्फ्लुएंजा, मीजल्स, स्कारलेट फीवर, मलेरिया एवं रूमेटिक फीवर से की जाती है।

सिद्धांत निदान एवं माधव निदान के परिशिष्ट में इस रोग को दण्डक रोग के नाम से कहा है। इनके अनुसार वात एवं श्लेष्मा के प्रकोप से यह उत्पन्न होता है तथा बालकों एवं स्त्रियों में इसका प्रकोप अधिक तीव्र होता है।

पृष्ठ 37 का शेष

ढाई अरब जनसंख्या निवास करती है।

डेंगू से बचाव के लिए घरों में इस्तेमाल होने वाले कूलर, घड़ों, बाल्टी और टैंक इत्यादि का पानी बदलते रहना चाहिए। सोते समय मच्छरदानी का प्रयोग करना चाहिए तथा बदन पर मच्छर निरोधक तेल अथवा लेप लगाना चाहिये। घर के आसपास गंदगी नहीं होनी चाहिए तथा आसपास एकत्रित पानी को उलीचकर हटा देना चाहिए अथवा जमा हुए पानी के ऊपर मिट्टी का तेल या डीजल की कुछ बूंदें डाल देनी चाहिए। काम पर जाते समय पूरे बांह की कमीज और और पैंट आदि पहन लेनी चाहिए। कीटनाशक उपलब्ध हो तो घर के बाहर व भीतर उसका छिड़काव भी करते रहना चाहिए। अभी तक क्योंकि डेंगू बुखार का टीका नहीं आया है, इसलिए पीड़ित व्यक्ति को बुखार की हालत में पैरासिटामॉल की गोली देनी चाहिए। कुछ आयुर्वेदिक व यूनानी दवाएं भी डेंगू में कारगर सिद्ध हो रही हैं, अतः वैद्य से पूछकर आयुर्वेदिक दवा का सेवन भी लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

एच–2/641, जानकीपुरम
कुर्सी रोड, लखनऊ

चिकित्सा

इस रोग की निश्चित औषधि न होने से रोगोत्पत्ति रोकने हेतु ईडिस ईजिप्टी मच्छर को नष्ट करना, उसके दंश से व्यक्ति को बचाने तथा व्याधि होने पर उसमें होने वाले उपद्रवों से बचाने के उद्देश्य से चिकित्सा की जाती है। अतः सर्व प्रथम रोग की रोकथाम पर ध्यान देना चाहिये। इस रोग का वैक्सीन (टीका) अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

रोकथाम में निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

मच्छरों की उत्पत्ति न हो इसके लिये जल एकत्रित रहने वाले स्थानों को मिट्टी से भर देना चाहिये। सफाई पर विशेष ध्यान दें। घर के आसपास गड्ढे न रहें। नालियां साफ रहें। चूने का छिड़काव घर के आसपास करें। घर में कूलर, गमला तथा अन्य स्थानों पर जलभराव न करें। उनका जल प्रतिदिन बदलें। जहां कहीं जल भराव हो अथवा आशंका हो वहां मिट्टी का तेल डाल दें। म्युनिस्पेलिटी से धुआँ करावें। अपने घर में डी.डी.टी एवं अन्य मच्छरनाशक औषधि को मशीन के जरिये छिड़कें। घर में नीम की पत्ती, गूगल एवं लोबान की धूनी देवें।

रोग से बचाव के लिये व्यक्ति हल्का भोजन करे जिससे कब्ज़, दस्त एवं जुकाम न हो। हाथ पैरों में सुबह शाम सरसों का तेल लगावें। कपड़े इस प्रकार पहनें कि हाथ पैर ढ़के रहें। मोजा घर में जरूर पहनें रात्रि में मच्छर दानी लगाकर तथा हाथ, पैरों में मच्छर निरोधी क्रीम लगाकर सोवें।

इस रोग में वातनाशक एवं श्लेष्मा शामक चिकित्सा करनी चाहिये। एक बार डेन्ग्यू बुखार होने पर कम से कम 2 वर्ष तक रोग निरोधक क्षमता आ जाती है परंतु कछ व्यक्तियों में 3 माह बाद ही फिर से रोग का आक्रमण देखा गया है।

रोग की प्रारंभिक अवस्था में भैषज्य रत्नावली में उल्लिखित चतुर्दशाङ्ग क्वाथ का प्रयोग उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें दशमूल के साथ चिरायता, सौंठ, मोथा एवं गिलोय का क्वाथ बनाकर दिन में 3 बार दें साथ ही–

नारदीय लक्ष्मी विलास – 2 डेसीग्राम
त्रिभुवन कीर्त्ति – 2 डेसीग्राम
गोंदतीभस्म – 4 डेसीग्राम
अभ्रकभस्म – 1 डेसीग्राम
प्रवाल भस्म – 2 डेसीग्राम

को आपस में मिलाकर 1 मात्रा शहद एवं 1 चम्मच शंखपुष्पी के शर्बत से दिन में 3–4 बार लें। अथवा

जयमंगलरस – 1 डेसीग्राम
प्रवालभस्म – 2 डेसीग्राम
गुडूचीसत्व – 4 डेसीग्राम

को आपस में मिलाकर दिन में 3 बार भुने जीरे के आधा चम्मच चूर्ण एवं शहद के साथ दें। रोगी को दूध और बिस्कुट दें। किशमिश, मुनक्का एवं पिंडखजूर दिये जा सकते हैं। ज्वर का वेग कम होने पर मूंग की पतली दाल, मूंग की रिवचड़ी एवं दलिया का प्रयोग करें। ज्वर उतर जाने पर पथ्य व्यवस्था सावधानी से करें। उक्त औषधि व्यवस्था द्वारा रोगी में कोई उपद्रव नहीं होते और एक सप्ताह के उपरांत ज्वर अचानक न उतरकर धीरे–धीरे उतर जाता है।

जीवनीय
पढ़िये
स्वस्थ जीवन
पाइये

मलेरिया और डेंग्यू की देशी चिकित्सा

वैद्य बदलू राम रसिक

सरस्वती : दादी मा, चरण स्पर्श

दादी मां : प्रसन्न रहो बेटी, आज सवेरे सवेरे कैसे आ गई। सब कुशल है।

सरस्वती : कुशल तो है, मगर मुहल्ला भर में घर घर जाड़ा लगने से बुखार, मलेरिया फैला है और कहीं–कहीं डेंग्यू फीवर फैला है। इसका उत्तम इलाज बताइये।

दादी मां : कापी निकालो और लिखो बेटी।

देखो हमारे यहां करंज (कंजा) की हरी–हरी पत्ती वाली कांटेदार बेल लगी होती है। इसकी 20 पत्ती और 10 कालीमिर्च पत्थर पर पानी से पीस कर थोड़ा शहद डालकर सवेरे शाम पिलाने से 3 दिन में मलेरिया ठीक हो जाता है। खाने में मूंग की खिचड़ी या मूंग की दाल रोटी बिना घी डाली देना चाहिये। चाय भी दें।

गोदन्ती भस्म आधा ग्राम, मोतीसूक्ति भस्म आधा ग्राम, स्फटिका भस्म आधा ग्राम, करंज की गूदी 2 ग्राम ले कर सबको मिलाकर चार मात्रा बनायें और 4–4 घंटे पर शहद से दें। इस दवा से 3 दिन में मलेरिया भाग जाता है।

डेंग्यू फीवर

लक्ष्मी विलास रस 4 गोली, त्रिभुवन कीर्ति रस 4 गोली, आनन्दभैरव रस 4 गोली, गोदन्ती भस्म आधा ग्राम, मोती सूक्ति भस्म आधा ग्राम, स्फटिका भस्म आधा ग्राम, सबको पीस कर शहद तथा अदरख के रस से 4–4 घंटे पर चटाने से डेंग्यू फीवर चला जाता है। खाने में मूंग की दाल रोटी या खिचड़ी बिना घी पड़ी देना चाहिये चाय भी दोनों समय पिलाना चाहिये। अगर बुखार न उतरे या खाल पर लाल नीले चकत्ते पड़ने लगें तो तुरन्त किसी डाक्टर या वैद्य को दिखाना चाहिये।

सरस्वती : दादी मां हमने ये सब दवाइयां लिख ली हैं। अब चलती हूँ चरण स्पर्श

कमलेश औषधालय
निकट दुर्गावा पुलिस चौकी
राजेन्द्रनगर, लखनऊ

जीवनीय विशेषांक बिना डाक खर्च

जीवनीय के पाठक विशेषांकों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें पत्र भेजते रहते हैं ऐसे सभी जिज्ञासु पाठकों के लिए हम अपने पास उपलब्ध विशेषांकों की सूची प्रस्तुत कर रहे हैं :

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य	रु. 8	मानसिक स्वास्थ्य	रु. 12
यकृत रोग	रु. 8	शिशु रोग	रु. 12
दंत सुरक्षा	रु. 6	हृदय रोग	रु. 15
वृद्धावस्था	रु. 6	श्वसन तंत्र	रु. 15
योग	रु. 8	आहार और पोषण	रु. 15
नेत्र सुरक्षा	रु. 10	रसायन	रु. 15
उदर रोग	रु. 10	मधुमेह	रु. 15
अस्थि रोग	रु. 10	नाक, कान, गला	रु. 15
महिला स्वास्थ्य	रु. 12		

यदि आप कम से कम 50/– रु. मूल्य की पत्रिकाओं का आर्डर अग्रिम भुगतान के साथ भेजें तो डाक खर्च नहीं देना होगा।

जीवनीय सोसायटी
ई–III/249 अलीगंज
लखनऊ – 226 001

टी.बी. नियंत्रण का नया कार्यक्रम

डा. शाम अष्टेकर

ट्यूबरकुलोसिस या टी.बी. एक गंभीर और खतरनाक बीमारी है। यदि इसका इलाज न किया जाय तो मौत हो जाती है। लम्बे समय तक खांसी, बुखार, सीने में दर्द, बलगम में खून आना और शरीर का बहुत बुबला हो जाना इस रोग के लक्षण हैं। बलगम में टी.बी. जीवाणु का पाया जाना सही निदान है। यद्यपि टी.बी. मुख्यतः फ़ेफड़ों में होती है पर यह शरीर के अन्य भागों जैसे आंत, हड्डियों और जोड़ों में भी हो सकती है। यह जरूरी नहीं कि जीवाणु संक्रमित सभी व्यक्तियों में टी.बी. के लक्षण पाये जाय। भारत में किये शोधों से ज्ञात होता है कि संक्रमित लोगों के केवल 1 से 2 प्रतिशत में ही बीमारी विकसित होती है वह भी कभी–कभी 20–25 साल बाद। इन्हीं कारणों से ट्यूबरकुलोसिस पर नियंत्रण बहुत कठिन रहा है। पश्चिमी विकसित देशों में इस रोग की औषधि ढूंढे जाने से पहले ही सामाजिक – आर्थिक प्रगति के कारण इस रोग में काफी कमी हुई थी। भारतवर्ष के आदिवासी इलाकों और झुग्गी झोपड़ियों में इसके बढ़ने के कारण गरीबी और कुपोषण भी हैं। पं. जवाहर लाल नेहरू के समय में टी.बी. को जन स्वास्थ्य समस्या मान कर 1959 में राष्ट्रीय ट्यूबरकुलोसिस कार्यक्रम चलाया गया था। इस कार्यक्रम को स्वास्थ्य सेवाओं के ढांचे के तहत जनता की स्वास्थ्य समस्याओं के निराकरण हेतु चलाया गया था। नेहरू युग के बाद स्वास्थ्य रक्षा के लगातार निजीकरण ने जन स्वास्थ्य की ओर से ध्यान हटा कर रोगों के इलाज तक अपने को सीमित कर लिया। नेशनल ट्यूबरकुलोसिस कार्यक्रम के साथ–साथ जन स्वास्थ्य सेवाओं ने सफल मलेरिया विरोधी अभियान चलाया परन्तु इसके बाद इन सेवाओं की लगातार उपेक्षा की गई। स्वास्थ्य मंत्रालय में आई ए.एस. अफसरों को बैठा दिया गया जिनको न ऐसे काम करने की क्षमता थी और न ही दिलचस्पी। इस उपेक्षा से स्वास्थ्य सेवाओं का ढांचा चौपट हो गया फलस्वरूप धीरे–धीरे विदेशी सलाहकारों और एजेन्सियों के दरवाजे इस क्षेत्र के लिए खोल देने की हालत पैदा हो गई। आज कल केरल, तमिलनाडु और पंजाब जैसे प्रदेशों में स्वास्थ्य सेवायें अपनी क्षमता का केवल एक चौथाई काम कर पा रही हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में तो हालत और भी खराब है। भारतीय जनता की स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने का एक ही रास्ता था कि जन स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत किया जाय। 1981 में सूरजकुंड अधिवेशन में देश के 35 जाने माने विशेषज्ञों ने राष्ट्रीय ट्यूबरकुलोसिस कार्यक्रम पर गहन विचार विमर्श कर उसे ठीक करने के सुझाव दिये थे परंतु इन सुझावों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया गया। इस स्थिति में विश्व स्वास्थ्य संगठन को ट्यूबरकुलोसिस नियंत्रण के पश्चिमी माडल को थोपने का मौका मिल गया। इस माडल में भारत में इस दिशा में संकलित ज्ञान और अनुभव की पूरी तरह अनदेखी की गई। इन पश्चिमी विशेषज्ञों की सलाह पर लगभग गोपनीय ढ़ंग से टी.बी. नियन्त्रण का नया कार्यक्रम तैयार कर लिया गया। कार्यक्रम तैयार करते समय जब मामला अखबारों में आया, तब इस पर कुछ डाक्टरों और विद्वानों ने जानकारी चाही तो गहरी खामोशी अपना ली गई। इस तरह तीन साल तक की गुप्त वार्ताओं के बाद इस कार्यक्रम की घोषणा की गई। यह केवल संयोग नहीं हो सकता कि इस वार्तालाप में भाग ले रहे दो सर्वोच्च सरकारी अधिकारी विश्व स्वास्थ्य संगठन में मोटे वेतन भत्ते पाने वाले पदों पर चले गये हैं।

इस कार्यक्रम के लिये जापान और इंग्लैंड के कई संगठनों तथा यूनीसेफ और विश्व स्वास्थ्य संगठन से दसियों करोड़ की आर्थिक सहायता मिल रही है। इस कार्यक्रम के लिये 1995 की विनिमय दरों पर चार सौ बयालीस करोड़ रू. कर्ज का आश्वासन विश्व बैंक ने दिया है। यह कर्ज देश को अदा करना पड़ेगा। देश में ट्यूबरकुलोसिस की औषधियों तथा निदान उपकरणों का अभाव है, ऐसी स्थिति में 80 प्रतिशत ग्रामीण रोगियों का इलाज व्यापक स्वास्थ्य तंत्र के बिना संभव नहीं है। जब तक सब जगह निदान सुविधायें तथा सस्ती औषधियां उपलब्ध नहीं कराई जातीं तथा प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा का ढांचा मजबूत नहीं किया जाता, तब तक ट्यूबरकुलोसिस की बहुल औषध चिकित्सा प्रणाली (मल्टी ड्रग थेरेपी) ठीक से लागू नहीं की जा सकती। इससे औषध प्रतिरोधी टी.बी. का खतरा भी कई गुना बढ़ जाता है।

(वी.एच.ए.आई. द्वारा प्रकाशित नये टी.बी. नियंत्रण कार्यक्रम की समीक्षा के आधार पर)

टी.बी. के मरीज़ की आम छवि यह है कि वह एक अधेड़ पुरुष या स्त्री होगी, जो अपने अन्दर इस डरावनी बीमारी की सूचना अचानक पाकर हताश होगी कि रोज़ी–रोटी के पहले के कड़े संघर्ष के साथ यह एक और संघर्ष जुड़ गया। आज भी हम बहुत असहाय महसूस करते हैं जब प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के वाह्य रोगी विभाग में आया टी.बी. का कोई मरीज़ लूटा जाता है। उन्हें उनकी नासिक दवाइयां देने से पहले, सैलाइन लगाने के बहाने 100 रूपए ढीले करवा लिए जाते हैं। कई मर्तबा शारीरिक

जांच में स्पष्ट रूप से टी.बी. का मरीज़ नज़र आने वाला व्यक्ति, बलगम की जांच में बीमार नहीं साबित होता है। तब वह एक बार फिर डॉक्टरों के बाज़ार में धोखाघड़ी का शिकार होता है।

प्राइवेट क्लीनिक में अपने काम के दौरान बच्चों की टी.बी. के पूरे मामले को अनदेखा कर दिया जाता है और बच्चे महीनों तक चुपचाप कष्ट झेलते रहते हैं। कई बार, या तो उनकी बीमारी के लक्षण उभरते नहीं, या फिर उभरते भी हैं तो धुंधले-से। तरह-तरह के झूठे परीक्षण/प्रयोग किए जाते हैं जिससे सम्बधित परिवार, डॉक्टर के चंगुल में पहुंच जाता है। कई मर्तबा, कुछ समय इलाज कराने के बाद वह परिवार उस डॉक्टर को छोड़, किसी अन्य डॉक्टर के पास चला जाता है।

वैसे तो टी.बी. विशुद्ध चिकित्सकीय समस्या न होकर, एक सामाजिक समस्या है परंतु शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो टी.बी. के चिकित्सकीय प्रबन्धन की ज़रूरत को स्वीकार न करता हो।

कमजोर वर्ग की बीमारी

टी.बी. ज्यादातर समाज के कमज़ोर तबकों को प्रभावित करती है। अनुमान है कि इनकी 50 प्रतिशत आबादी संक्रमित है। भारत में टी.बी. के कोई 1.4 करोड़ मामले हैं जिनमें से 30-50 लाख बहुत ज्यादा संक्रामक हैं। प्रति वर्ष तकरीबन 5 लाख लोग इस खतरनाक बीमारी की वजह से मौत के शिकार होते हैं। हर वर्ष करीब 15 लाख नए मामले सामने आते हैं। इनमें से 25 प्रतिशत ऐसे होते हैं जिनके बलगम में बैक्टीरिया होते हैं, यानी ये मरीज़ संक्रामक होते हैं। अन्य मरीज़ों की पहचान रेडियोलॉजिकल विधियों से ही हो पाती है। लगभग इतने ही मामलों की पहचान निजी डॉक्टरों द्वारा की जाती है। वर्तमान में स्थिति यह है कि 60 प्रतिशत एचआईवी सकारात्मक लोग टी.बी. के मरीज़ भी हैं। सरकारी व गैर सरकारी जांच को मिलाकर, आज 3 प्रतिशत लोग टी.बी. की बीमारी से

स्वास्थ्य सेवाओं का ढ़ाँचा

डॉ. एन.एच. आंटिया, मुम्बई

देश में स्वतंत्रता के बाद, निजी व सरकारी दोनों क्षेत्रों में, स्वास्थ्य सेवाओं के ढाँचे में बहुत विस्तार हुआ है। दुर्भाग्यवश, इस विस्तार का स्वरूप व फैलाव आम जनता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नहीं हुआ। आजकल एक ओर, समृद्ध लोगों के लिए शहरों में आधुनिक अस्पताल व नर्सिंग होम की सेवाएँ उपलब्ध कराता हुआ, मुनाफा कमाने वाला निजी क्षेत्र है, जिसमें चिकित्सा के क्षेत्र के तीन चौथाई स्वास्थ्य कार्यकर्ता काम कर रहे हैं। जबकि दूसरी ओर, गरीबों के लिए अनेक छोटे-छोटे दवाखाने और नर्सिंग होम हैं, जिनमें साफ-सफाई तक पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। फिर भी सरकारी क्षेत्र द्वारा, इलाज के लिए 4,11,800 बिस्तरों की तुलना में, निजी क्षेत्र द्वारा केवल 2,06,800 बिस्तर ही उपलब्ध कराए जाते हैं। इस प्रकार की सेवाओं का स्वरूप व विस्तार चिकित्सा की असली जरूरतों को ध्यान में रखने की बजाय, बाज़ारी व्यावसायिक शक्तियों द्वारा तय होता है इस व्यवस्था में शहरों में तो समृद्ध लोगों को जरूरत से ज्यादा दवाएँ दी जाती हैं, परन्तु गाँवों में स्थित प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में, जरूरत से भी बहुत कम व निम्न स्तर की दवाएँ ही पहुँच पाती हैं।

सरकारी क्षेत्र की सुविधाएँ, अधिकतर शहरी क्षेत्रों में और अक्सर आधुनिक सेवाओं वाले बड़े-बड़े अस्पतालों में ही केन्द्रित होती हैं, जैसे कि सरकारी मेडिकल कालेजों से जुड़े अस्पतालों में। ये सुविधाएँ, उन लोगों को इलाज की सेवाएँ उपलब्ध कराती हैं, जो कि निजी क्षेत्र की महँगी सेवाओं का उपयोग करने में सक्षम नहीं हैं। समाज में, नियोजित रूप से न होने की वजह से, इन सुविधाओं पर बहुत अधिक दबाव पड़ रहा है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं के ढाँचे में बहुत वृद्धि हुई है और अब प्रत्येक 30,000 की जनसंख्या पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, प्रत्येक 5,000 की जनसंख्या पर एक सब-सेंटर और प्रत्येक 1,000 की जनसंख्या पर एक सामुदायिक कार्यकर्ता उपलब्ध है। परंतु ये उपलब्धियाँ, भोर कमेटी द्वारा सुझाये गये स्तर तक नहीं पहुँची हैं। यही नहीं नौकरशाही की अकुशलता, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए दबाव, संचार माध्यमों और परिवहन की कमी, कमजोर नेतृत्व तथा उत्तरदायित्व और सामुदायिक नियंत्रण के अभाव में, इन बढ़ी हुई सुविधाओं का उपयोग भी बहुत कम मात्रा में हुआ है। किन-किन स्थानों पर स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करानी है, इसका फैसला भी, स्वास्थ्य की जरूरतों की बजाय, अधिकतर, स्थानीय राजनीति को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसलिये इसका उपयोग कम मात्रा में होता है और इनका रख-रखाव भी ठीक से नहीं किया जाता है। इसके साथ-साथ, इन सुविधाओं पर किये जाने वाले खर्च का 85 प्रतिशत कर्मचारी वर्ग पर किये जाने के कारण दवाइयों, अन्य सुविधाओं, रख-रखाव व परिवहन के लिये बहुत कम ही बचता है।

यदि शहरों के बड़े-बड़े अस्पतालों द्वारा उपलब्ध कराई जा रही स्वास्थ्य सेवाओं को, सामुदायिक स्वास्थ्य देखरेख की प्रणाली में भी उपलब्ध करा दिया जाय, जैसा कि आई सी एस एस आर / आई सी एम आर की 1981 की रिपोर्ट में भी सुझाव दिया गया है, तो सरकारी क्षेत्र की सीमित निधि, सुविधाओं व संसाधनों का, शहरी व ग्रामीण दोनों समुदायों में कहीं बेहतर उपयोग किया जा सकता है इसके द्वारा सामुदायिक अस्पतालों में, सामुदायिक कार्यकर्ताओं की सेवाएँ व विभिन्न स्तरों पर विशिष्ट व अति-विशिष्ट सुविधाएँ भी प्राप्त हो सकेंगी।

ग्रस्त हैं। भारत में टी.बी. का प्रकोप दुनिया में सर्वाधिक है। अनुमान लगाया गया है कि 1,000 की आबादी वाले किसी गांव में 15 व्यक्ति ऐसे होंगे जिनमें सक्रिय रोग होगा।

उपरोक्त आंकड़ों मे फेफड़ों के अलावा अन्य अंगों की टी.बी. को नहीं गिना गया है। गैर–फेफड़ा टी.बी. वैसे भी संशोधित राष्ट्रीय टी.बी. कार्यक्रम के सरोकार में शुमार नहीं है। बच्चों की टी.बी. का परिमाण भी ज्ञात नहीं है।

नया टी.बी. कार्यक्रम

पुराने कार्यक्रम की असफलता और एड्स के खतरे के कारण विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक व ओवरसीज़ डेवलपमेन्ट एजेन्सी की संयुक्त सहायता से एक नया कार्यक्रम तैयार किया गया है और यह पायलट चरण में लागू हो चुका है। इस नए कार्यक्रम की प्रमुख विशिष्टताएं इस प्रकार हैं :

स्वास्थ्यकर्मियों व स्वास्थ्य केन्द्रों तक पहुंचने वाले समस्त टी.बी. मरीज़ों का कारगर ढंग से उपचार किया जाए।

मरीज़ों की सक्रिय तलाश के बजाय निदान व नियमित अल्पावधि कीमोथेरपी पर ज्यादा ज़ोर दिया जाए। माना गया है कि कारगर प्रबन्धन होगा तो मरीज़ खुद आकर्षित होंगे।

शुरूआती तीव्र अवस्था में प्रत्यक्ष प्रेक्षित उपचार अर्थात दो माह तक हफ्ते में तीन बार स्वास्थ्यकर्मी के सामने गोलियां निगलनी होंगी। इससे मरीज़ जल्दी ही गैर–संक्रामक हो जाएगा।

इसके बाद आएगा निरन्तरता का दौर। इस दौर में मरीज़ को एक–एक सप्ताह की दवाइयां ले जानी होंगी। इसमें से एक खुराक वह स्वास्थ्यकर्मी की उपस्थिति में लेगा।

प्रति एक लाख आबादी पर एक सुदृढ़ इकाई उप–जिला स्तर पर बनाई जाएगी। जो बलगम लेने, सूक्ष्मदर्शीय जांच करने, खखार में नकारात्मक पाए गए रोगियों की एक्स–रे जांच करने वगैरह का काम करेगी।

स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को प्रत्यक्ष प्रेक्षित उपचार तथा निरन्तरता अवधि के कामकाज के लिए प्रशिक्षण दिया जाएगा।

सकारात्मक बातें

इनमें से कुछ बातें स्वागत योग्य हैं। मसलन उचित मापदण्डों के आधार पर उपचार–पैटर्न का मानकीकरण।

संशोधित कार्यक्रम के ज़रिए पहली मर्तबा हम टी.बी. कार्यक्रम के साथ कुछ न्याय करने जा रहे हैं। इस संशोधित कार्यक्रम में भी स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के एक निष्ठावान व सुप्रशिक्षित कैडर की कल्पना की गई है जो उचित है।

इस कार्यक्रम में टी.बी. के संदर्भ में उपलब्ध उन्नत तकनीकी समाधान का इस्तेमाल किया जाएगा।

क्यों बेअसर हो गया है टी.बी. का टीका ?

आम तौर पर टी बी का टीका विकासशील देशों में बहुत असरकारक नहीं रहा है। उम्मीद तो यह की जाती है कि जब व्यक्ति को टीका लगाया जाएगा तो उस व्यक्ति का शरीर टीके के खिलाफ एण्टीबॉडी बनाएगा और इस तरह से शरीर में एक प्रतिरोध क्षमता तैयार हो जाएगी। परन्तु बीसीजी के संदर्भ में यह प्रक्रिया इतनी सुचारू रूप से चलती नहीं लगती।

कई रोग बैक्टीरिया के कारण होते हैं। किसी बैक्टीरिया या उसके द्वारा उत्पन्न कोई रसायन जब शरीर में प्रवेश करता है तो शरीर उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया करता है। यदि प्रतिक्रिया काफी शक्तिशाली हो, तो यह बैक्टीरिया नष्ट हो जाता है। टीका बनाने के लिए इस बैक्टीरिया को कमज़ोर करके या मारकर हमारे शरीर में प्रवेश कराया जाता है। इस दुर्बल बैक्टीरिया के खिलाफ शरीर आसानी से विजय प्राप्त कर लेता है। इस प्रक्रिया के दौरान शरीर प्रशिक्षित हो जाता है और जब वास्तव में इस बैक्टीरिया से सामना होता है तो वह लड़ने को तैयार होता है।

बीसीजी का टीका बैसिलस काटमेट–गुएरिन नामक एक बैक्टीरिया से बनाया जाता है। बीसीजी टीके में यह बैक्टीरिया जीवित मगर दुर्बल रूप में रहता है। बैसिलस कामेट–गुएरिन टी.बी. पैदा नहीं करता मगर यह टी.बी. पैदा करने वाले बैक्टीरिया, माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस का सहोदर है। इसलिए इन दोनों बैक्टीरिया की सतह पर कई संकेत ऐसे होते हैं जो एक समान होते हैं। शरीर जब बैसिल कामेटेगुएरिन के खिलाफ प्रतिरोध क्षमता विकसित कर लेता है तो यह क्षमता माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस के खिलाफ भी काम आती है।

कई वैज्ञानिक मानते हैं कि विकासशील देशों में बीसीजी के कम असरदार होने का कारण इनका घटियापन है। दूसरी ओर ऐसे वैज्ञानिक भी हैं जो मानते हैं कि विकासशील देशों के लोग बीसीजी व टी.बी. बैक्टीरिया के संबंधी लगने वाले तरह–तरह के माइकोबैक्टीरियम के सम्पर्क में आते हैं ये अन्य माइकोबैक्टीरियम टीके के कामकाज में बाधा उत्पन्न करते हैं।

अभी यह स्पष्ट नहीं है कि अन्य बैक्टीरिया टीके के कामकाज में बाधा कैसे पहुंचाते होंगे। एक कारण तो यह हो सकता है कि जब बच्चे तमाम किस्म के बैक्टीरिया के सम्पर्क में आते रहते हैं, तो शायद शरीर बीसीजी के विरुद्ध कोई खास प्रतिक्रिया नहीं देता। शायद लगातार बैक्टीरिया के सम्पर्क में रहने से उनमें थोड़ी–बहुत प्रतिरोध क्षमता विकसित हो जाती है। इसलिए टीका लगे बच्चों व टीका न लगे बच्चों के बीच कोई उल्लेखनीय अन्तर नज़र नहीं आता। बहरहाल, यह तो साफ है कि टीकाकरण कोई सार्वभौमिक नुस्खा नहीं है।

इस कार्यक्रम के तहत उपचार का पूरा काम कम से कम उप केन्द्र स्तर तक विकेन्द्रित हो जाएगा।

संशोधित कार्यक्रम में बलगम परीक्षण को ज़्यादा तर्कसंगत बनाया गया है। इसमें एक की बजाय तीन नमूने लिए जाएंगे। यह रोग–प्रसार विज्ञान की दृष्टि से कहीं बेहतर रणनीति है। तीन नमूने लेने से परीक्षण की संवेदनशीलता काफी बढ़ जाएगी।

असफलता के बीज

सही मंशा और सुविचारित योजना के बावजूद मुझे इस कार्यक्रम में कई दरारें नज़र आ रही हैं। इनका आभास अन्य लोगों को भी है, मगर इनकी तरफ से आंख मूंद लेने की प्रवृत्ति ज़्यादा नज़र आती है इस कार्यक्रम की समस्याओं को सिलसिलेवार देखना ज़रूरी है।

उप–जिला इकाई के स्तर तक तो कार्यक्रम का सुगठित ताना–बाना है। लेकिन यह गांव के स्तर पर जाकर ढीला पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि हमारे पास सामान्य ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का ऐसा कैडर नहीं है जो तकनीकी रूप से इतने पेचीदा महत्वाकांक्षी कार्यक्रम को संभाल सके।

मैंने यह जानने की कोशिश की है कि क्या अन्य स्वास्थ्यकर्मियों, जैसे दाइयों या पूर्व सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को भी इसमें शामिल किया जाएगा। इसका उत्तर नकारात्मक पाया गया।

कई कारणों से उप–केन्द्रों का लगभग आधा स्टाफ अपने मुख्यालय पर निवास नहीं करता है। ये लोग सुबह की बस से (9–10 बजे) अपने उप–केन्द्र पहुंचते हैं व 4–5 बजे की बस से घर लौट जाते हैं, टी.बी. के ज़्यादातर मरीज़ कामकाजी स्त्री–पुरुष होते हैं। नतीजा यह होगा कि वे प्रत्यक्ष प्रेक्षित उपचार के दायरे से बाहर छूट जाएंगे। प्रत्यक्ष प्रेक्षित उपचार तभी मुमकिन है जब स्वास्थ्यकर्मी गांव में ही निवास करते हों।

प्रत्यक्ष प्रेक्षित उपचार कार्यक्रम में आग्रह यह है कि मरीज़ स्वास्थ्यकर्मी की उपस्थिति में दवा खाए और स्वास्थ्यकर्मी कुछ समय तक उसके पास रुके ताकि कोई भी दिक्कत होने पर उसे संभाला जा सके। हर मरीज़ हर दूसरे दिन इसके लिए पहुंचेगा – दो माह तक उसके बाद 4–5 महीनों तक हर हफ्ते पहुंचेगा। इस प्रकार यदि हम 75 मरीज़ हर उप–केन्द्र पर मानें, तो प्रतिदिन वहां लगभग 10–15 टी.बी. के मरीज़ पहुंचेंगे। यदि इस कार्य को नियोजित ढंग से किया जाए तो यह एक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के लिए पर्याप्त होगा। आज स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की ज़िम्मेदारियों में परिवार नियोजन, टीकाकरण, प्रसव–पश्चात देखभाल आदि शामिल हैं। ऐसे में टी.बी. चौथी या पांचवीं प्राथमिकता पर होगा। क्या यह संशोधित कार्यक्रम से मेल खाएगा?

इस कार्यक्रम मे बलगम लेने का काम उप ज़िला इकाई को सौंपा गया है। यानी सारे मरीज़ इस इकाई में कतार बनाकर खड़े रहेंगे। इसके अलावा बलगम के तीन नमूने लेने का प्रावधान है। (एक नमूना जब मरीज़ आए, एक नमूना अगले दिन सुबह और एक नमूना उसके कुछ घण्टे बाद)। यह काम काफी समय व ताकत की मांग करेगा। मरीज़ को रात वहां बितानी होगी। इसमें खर्च व असुविधा दोनों होंगे।

इस कार्यक्रम में जितनी भी टी.बी. रोधी दवाइयां शामिल की गई हैं उनके गम्भीर व छोटे–मोटे साइड–प्रभाव हैं। यदि छोटी–मोटी दिक्कतों को छोड़ भी दें, तो भी यकृत–शोथ, पीलिया, सांस रुंधना, गुर्दे का नाकाम होना आदि गम्भीर प्रभावों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। एक गांव के स्तर पर शायद ऐसे गम्भीर प्रभाव

टीकाकरण सुरक्षा की गारंटी नहीं

राष्ट्रीय संक्रामक रोग संस्थान, नयी दिल्ली के डाक्टर पी.के. सैनानी और राष्ट्रीय हैजा तथा उदर रोग संस्थान कलकत्ता के डाक्टर मंडल ने अगस्त 1996 में केरल के हैजाग्रस्त इलाकों का दौरा किया और कूइलमंडलम् और पालघाट के जिला अस्पतालों में हैजे के मरीजों की तीमारदारी देखी और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्वस्थ लोगों को हैजे का टीका लगा कर हैजे के आक्रमण से मुक्त नहीं समझा सकता क्योंकि टीके का असर तीन माह से अधिक नहीं रहता।

महामारियों से सुरक्षा के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन भी टीकाकरण को पूर्ण सुरक्षित नहीं मानता। महामारियों से बचाव के लिए पीने का शुद्ध पानी और शुद्ध वातावरण तथा पोषाहार ज्यादा जरूरी और कारगर है।

डा. सैनानी और डा. मंडल का कथन है कि रुके हुए पानी में जीवाणु सोये रहते हैं। किंतु पानी के चलायमान होते ही वे जाग पड़ते हैं, और प्रजनन करने लगते हैं। मई से अगस्त-सितंबर तक पानी बहुत बड़ी मात्रा में चलायमान रहता है अतः जीवाणु बहुत सक्रिय रहते हैं। इन्हीं दिनों पीने का शुद्ध पानी मिलना कठिन होता है और इन्हीं दिनों देश में कहीं न कहीं हैजे का प्रकोप होता है।

इन विशेषज्ञों का निष्कर्ष यह है कि हैजा और अन्य महामारियों से सुरक्षा की चार शर्तें है, शुद्ध पेय जल, प्रदूषण रहित वातावरण, व्यक्तिगत सफाई और पोषाहार।

इक्का-दुक्का हों मगर पूरे कार्यक्रम के विशाल पैमाने को देखते हुए कहा जा सकता है कि ऐसे मामले होते रहेंगे। क्या स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के पास इनके लिए समय होगा? वैसे भी उन्हें जो प्रशिक्षण दिया जाता है वह ऐसी समस्याओं से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं है। हो सकता है कि इनके चलते लोग निजी डॉक्टरों का रुख करें।

वैसे भी पहले ही काफी मरीज़ निजी डॉक्टरों के पास ही जाते हैं। लिहाज़ा दवा के प्रतिकूल असर के मामले पर गौर करना और भी ज़रूरी हो जाता है।

इस कार्यक्रम के भी विस्तार व इस कार्यक्रम तक लोगों की पहुंच की समस्या बरकरार रहने की सम्भावना है। उप-केन्द्र से बाहर के गांवों में रहने वाले 60-70 प्रतिशत मरीज़ों के लिए नियमित रूप से बारम्बार दवा लेने के लिए उप-केन्द्र पर आना कठिन व महंगा साबित होगा। इस महत्वाकांक्षी कार्यक्रम में यह प्रमुख अड़चन बन जाएगी। यदि हर गांव में एक उपचार डिपो का प्रावधान किया जाए तो शायद बात बने। परन्तु ऐसा डिपो तभी बन सकता है जब स्वास्थ्यकर्मियों का एक पूरा कैडर उपलब्ध हो।

कई उप-केन्द्रों के पास अपनी कोई इमारत भी नहीं है और उनका काम किराए के मकानों से संचालित होता है। मकान के बाकी हिस्से में व आसपास के मकानों में परिवार व बच्चे रहते हैं। यह उचित नहीं कहा जा सकता कि ऐसे स्थानों पर सक्रामक मरीज़ लगातार आते रहें।

बड़ी संख्या में टी.बी. के मरीज़ निजी डॉक्टरों के पास जाते हैं। संशोधित कार्यक्रम में जिस ढंग की सख्ती रखी जाने की उम्मीद है, उसकी उम्मीद निजी डॉक्टरों से नहीं की जा सकती। एक तरफ तो, संशोधित कार्यक्रम अपने हिस्से के मरीज़ों का इलाज करेगा और दूसरी तरफ शेष मरीज़ पुरानी औषधियों का सेवन करते रहेंगे। अतः निजी क्षेत्र के साथ संवाद स्थापित करके एक युक्तिसंगत टी.बी. उपचार में उसे भी शामिल करना जरूरी है।

मेरा ख्याल है कि इस नए कार्यक्रम में भी उन मरीज़ों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाएगा जिनके बलगम में टी.बी. के कीटाणु न हों। आखिर सारी गणनाएं तो 2-3 मरीज़ प्रति हज़ार आबादी के हिसाब से की जा रही हैं।

इस तरह से रोग के प्रसार को रोक दिया जाएगा जबकि अन्य मरीज़ों का इलाज मानवीय आधार पर किया जाएगा, बशर्ते कि वे खुद चलकर हमारे पास आएं।

इस संदर्भ में जब तक कि राज्य की जिम्मेदारी परिभाषित न हो जाए मेरे लिए अपना मत व्यक्त करना मुश्किल है। क्या प्रत्येक टी.बी. मरीज़ के इलाज की जिम्मेदारी राज्य की है? फिर अन्य बीमारियों के बारे में हमारी राय भला क्या होगी? क्या टी.बी. का महत्व इसलिए है कि यह अन्य लोगों को लग सकती है या इसलिए कि यह उस व्यक्ति के लिए कष्ट का सबब बनती है। जो देश (टी.बी. को जन्म देने वाली) बुनियादी समस्याएं निपटाने में असमर्थ रहा हो, क्या वहां हर मरीज़ के इलाज के लिए वित्तीय व्यवस्था की जा सकती है? (स्रोत फीचर्स)

विज्ञापनों का कुप्रभाव

एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 1900 करोड़ रूपये के टानिक प्रयोग किये जाते हैं और करीब 50 करोड़ से अधिक के 'हेल्थ फूड' बेचे जाते हैं। कपिल देव यह घोषणा करता है कि बूस्ट ही सर्वोत्तम भोजन है। अब प्रश्न आता है कि आखिर इस गरीब देश में इतने 'हेल्थ फूड' और 'टानिक' क्यों बनते और बिकते हैं और उन्हें कौन खाता है। यह सत्य है कि हमारी 25 फीसदी जनता गरीबी की रेखा से नीचे रहती है। वे संतुलित भोजन अपने परिवार को नहीं दे सकते। उसके लिए किसी भी चिकित्सक द्वारा टानिक या हेल्थ फूड सुझाना घोर अन्याय है। 70 से 75 फीसदी उच्चवर्गीय या मध्यवर्गीय परिवार का भोजन संतुलित भोजन होता है। हमें बताया और समझाया जाता है कि शाकाहारी भोजन निम्न वर्ग का है इसमें अच्छे प्रोटीन नहीं होते इत्यादि-इत्यादि? यह बिल्कुल असत्य है। अन्नों, दालों, तिलहन, हरी सब्जी, कन्द, मूल, फल तथा दूध-दही के सेवन से निश्चित रूप से भोजन संतुलित बनता है। हमारे यहां हर रोज भिन्न प्रकार का भोजन बनता है और शायद प्रत्येक परिवार में एक तरह की दाल या सब्जी भी अलग-अलग तरीके से बनायी जाती है, जो एक विशेष स्वाद देती है।

हमारा भारतीय आहार देश की भौगोलिक जलवायु के अनुसार अति उत्तम और सशक्त है। देश के अधिकांश भागों में गेहूं, चावल, दाल, दूध, दही, हरी पत्तेदार सब्जियां, कच्ची सब्जियां और फलों का सेवन एक पूर्ण संतुलित आहार बना देता है। अगर आप उचित मात्रा में इनका सेवन कर रहे हैं और आपका पाचन संस्थान ठीक है, तो आपको किसी टानिक, बी.काम्प्लेक्स, बूस्ट, हार्लिक्स, प्रोटीनेक्स, काम्प्लान या ध्रेपटिन बिस्कुट की आवश्यकता नहीं है। इनकी आवश्यकता केवल तब ही पड़ सकती है, जब किसी रोग के कारण पाचन संस्थान खराब हो अथवा किसी लम्बे रोग के बाद, और वह भी केवल कुछ दिन के लिए ही।

चिकित्सक लोग भी अपने नुस्खे में एक-दो टानिक अवश्य लिख देते हैं। प्रतिवर्ष इस देश में हम 1900 करोड़ रूपये की टानिक वाली दवाइयां न केवल अपने मूत्र में निकाल देते है, वरन अपने आमाशय, जिगर और गुर्दो पर भी जोर डालते है।

टीकाकरण - कहां तक लाभकारी

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के डाक्टरों, दवा निर्माता कंपनियों और सरकारी प्रचार तन्त्र ने टीकाकरण को सार्वजनिक और अनिवार्य बना कर उसे बच्चों के कुछ रोगों को दूर करने वाले देवता के रूप में पेश किया है। पल्स पोलियो टीकाकरण की अतिरिक्त खुराकें तो भोजन की तरह सभी को पिलाई जा रही हैं। पर क्या वास्तव में टीकाकरण देवता है?

कनाडा के एलेन फिलिप्स की रिपोर्ट 'डिसपेलिंग वैक्सीनेशन मिथ्स' वहीं की वाइल्डफायर पत्रिका में छपी है। अपनी इस रिपोर्ट में श्री फिलिप्स ने टीकाकरण के बारे में प्रचलित धारणाओं का खंडन किया है। उनकी रिपोर्ट से टीकारण का एक दैत्य वाला स्वरूप सामने आता है। फिलिप्स की रिपोर्ट अमरीका और यूरोप मे टीकाकरण के विरोध में चले आंदोलन का एक रूप प्रस्तुत करती है तथा विविध और भरोसेमंद स्रोतों पर आधारित है जिसमें सरकारी स्रोत भी शामिल हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका की फेडरल सरकार ने नेशनल वैक्सीन इन्जरी कम्पेन्सेशन प्रोग्राम चला रखा है। इस कार्यक्रम के तहत लगभग नौ करोड़ डालर हर साल वैक्सीन से बीमार हुये या मरे बच्चों के माता-पिता को मुआवजे के तौर पर देती रही है। वर्ष 1988 तक इस कार्यक्रम से मुआवजा लेने के लिये पांच हजार प्रतिवेदन मिले जिनमें से 700 वैक्सीन के कारण मौतों के थे। निश्चित रूप से टीकाकरण से दवा निर्माता कंपनियों के मुनाफे बढ़ रहे हैं और इस पर वे कोई सवालिया निशान पसन्द नहीं करती। यह भी दिलचस्प बात है कि इंश्योरेंस कंपनियां भी इन मामलों में कुछ नहीं करती।

टीकाकरण के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि यह बहुत प्रभावी है जो एक मिथक है। वर्ष 1989 में ओमान में पूर्ण टीकाकरण का लक्ष्य प्राप्त करने के 6 महीने बाद महामारी के रूप में पोलियो फैला। अमरीका में काली खांसी का आक्रमण टीकाकरण के बाद बढ़ा।

वास्तव में टीके की खोज से पहले ही सफाई, स्वास्थ्य और पोषण में सुधार से इन रोगों में बहुत कमी आ गई थी। वर्ष 1850 और 1940 के बीच अमेरिका और इंग्लैंड में खसरे में 97 प्रतिशत और पोलियो में 82 प्रतिशत की कमी आ गई थी।

वैक्सीन लगाने से शरीर में रोग प्रतिरोध बढ़ना माना जाता है परन्तु ऐसा होना संदेह से परे नहीं है। वैक्सीन लगाने से शरीर में एन्टीबाडी बनती हैं परन्तु एन्टीबाडी की संख्या तथा रोग प्रतिरोध क्षमता में सीधा संबंध संभवतः नहीं है। यह देखा गया है कि अधिक एन्टीबाडी वाला व्यक्ति बीमार हो जाता है पर कम एन्टीबाडी वाला नहीं होता। गामा ग्लोव्यूलिन की कमी वाले बच्चों में एन्टीबाडी बनते ही नहीं पर वे रोगों का प्रतिकार कर लेते हैं। प्रतिरोध क्षमता प्राप्त करना एक पेचीदा प्रक्रिया है तथा इसे टीकाकरण द्वारा कर पाना संभव नहीं है।

टीकाकरण हेतु टीके की खुराक एक आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिये समान होती है भले ही उनका वजन और पोषण का स्तर कुछ भी हो। यह उचित नहीं प्रतीत होता। टीकाकरण में भोजन, परिस्थिति तथा जातिगत विभिन्नताओं का ध्यान नहीं रखा जाता । ऐसा करना घातक हो सकता है। उदहरणार्थ उत्तरी आस्ट्रेलिया के निवासियों में टीकाकरण के बाद बच्चों की मृत्यु दर 50 प्रतिशत बढ़ गई। शोधों से ज्ञात हुआ कि यहां के भोजन में विटामिन सी की कमी होती है। टीकाकरण से यह कमी और बढ़ गई जिसके परिणामस्वरूप बच्चों की मौते हुई।

बच्चों की अधिकांश संक्रामक बीमारियां अब चिकित्सा जगत में विकास से जानलेवा नहीं रह गई हैं साथ ही साथ इनके होने से जीवन भर के लिये रोग प्रतिरोध क्षमता प्राकृतिक रूप से विकसित हो जाती है।

पोलियो उन्मूलन में टीकाकरण की भूमिका को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया जाता रहा है पर वास्तव में ऐसा नहीं है। वर्ष 1973 और 1983 के बीच अमरीका में टीकाकरण के कारण पोलियो के मामलों में 87 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

टीकाकरण के सुरक्षित और प्रभावी विकल्प दशकों से उपलब्ध रहे हैं पर दवा व्यवसाय द्वारा उन्हें दबा दिया गया। भारत में भी चेचक के बचाव का तरीका था पर उसे दबा दिया गया; होम्योपैथी और आयुर्वेद में रोग प्रतिरोध के लिये बहुत प्रभावशाली औषधियां हैं। इनका प्रयोग संक्रामक रोगों के फैलने की स्थिति में या उसकी आशंका होने पर प्रयोग किया जा सकता है। होम्योपैथी में वैक्सीन के दुष्प्रभावों को दूर करने वाली औषधियां भी हैं जो एलोपैथी में नहीं है।

श्री फिलिप्स ने अमरीका और यूरोप में चले टीकाकरण विरोधी अभियान का जिक्र करते हुये यह भी बताया है कि वहां टीकाकरण से बचने के लिये किन कानूनों और धार्मिक मान्यताओं का सहारा लिया जा रहा है। उन्होंने इस विषय पर प्रकाशित 30 से अधिक पुस्तकों की सूची भी अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत की है।

यौन संचारित रोग (एस.टी.डी.)

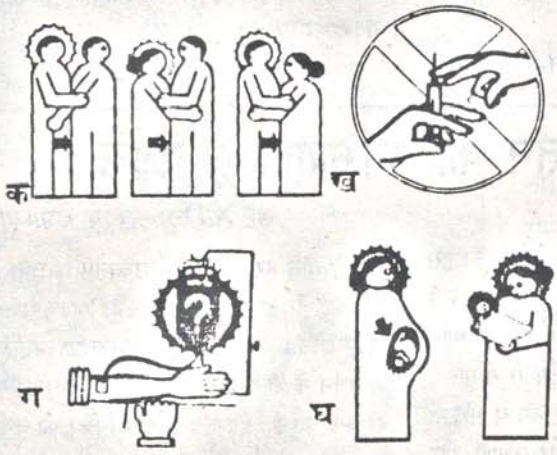

एस.टी.डी. एवं एड्स संक्रमण की विधि (क) असुरक्षित यौन सबध (ख) संक्रमित सुईयां (ग) संक्रमित रक्त (घ) गर्भवती माता से गर्भस्थ शिशु

यौन संचारित रोग यानि एस.टी.डी. मैथुन या संभोग क्रिया द्वारा संचारित रोग होते हैं। ये रोग पहले से संक्रमित व्यक्ति के साथ यौन संपर्क के द्वारा संचारित होते हैं। इन रोगों को पहले वीनीरियल डिजीज़ (वी.डी.) के नाम से जानते थे। यह रोग बैक्टीरिया, फफूँद, विषाणुओं तथा प्रोटोजोआ आदि से होते हैं।

इस समय 20 से अधिक यौन संचारित रोगों के बारे में पता है। जिनमें गनोरिया (सुजाक), सिफिलिस (आतशक), शैन्क्रोयड (रतिजव्रण), हरपीस और एड्स प्रमुख हैं। एस.टी.डी. लगभग मलेरिया की तरह आम रोग है। विश्व भर में हर साल लगभग 25 करोड़ से अधिक नए लोग इसकी गिरफ्त में आते हैं।

भारत में भी पूरी जनसंख्या का लगभग 5 फीसदी भाग या लगभग 4 करोड़ नए लोग हर साल एस.टी.डी. की गिरफ्त में आते हैं। इस रोग की व्यापकता शहरों में 10 प्रतिशत और देहाती क्षेत्रों में 7 प्रतिशत है। भारत में गनोरिया, सिफिलिस और शैन्क्रोयड आदि संक्रमण ज्यादा व्यापक मात्रा में हैं।

एस.टी.डी. कैसे होता है?

जब एक व्यक्ति किसी पहले से संक्रमित (रोग युक्त) व्यक्ति के साथ असुरक्षित यौन संबंध स्थापित करता है तो यह रोग हो सकते हैं। यह यौन क्रियाएं योनि, गुदा या मुँह से संबंधित हो सकती हैं एस.टी.डी. के जीवाणुओं के लिए योनि लिंग, मलाशय या गुदा तथा मुँह आदि उपयुक्त पर्यावरण प्रदान करते हैं जहाँ से वे मानव शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। यह स्त्री या पुरुष दोनों को प्रभावित करते हैं। पहले यह रोग आमतौर पर 20 से 40 वर्ष की उम्र वाले यौन क्रिया से जुड़े लोगों में सामान्य थे; किन्तु आज कल एस.टी.डी. का संक्रमण धीरे–धीरे कम आयु वालों में भी हो रहा है।

एस.टी.डी. के जीवाणु एक खास अवधि के बाद रोग के सकेत व लक्षण प्रकट करते हैं। ज्यादातर एस.टी.डी. संक्रमण लैंगिक स्राव या शरीर के अन्य भागों में खुले कटे घावों से होते हैं।

कुछ यौन संचारित रोग जैसे एड्स और सिफिलिस का संचार प्रदूषित सुइयों, त्वचा छेदन के औजारों, दूषित व्यक्ति से रक्त आदान के समय तथा जन्म या गर्भावस्था के दौरान संक्रमित माँ से बच्चे को हो सकते हैं।

एस.टी.डी. के लक्षण

सामान्य लक्षण जो स्त्री या पुरुष किसी में भी हो सकते हैं :

- पेशाब या मल त्याग के समय जलन, पीड़ा या बार–बार पेशाब आना
- लिंग प्रदेश में दर्द युक्त या दर्द रहित पीव की गाँठें, छाले या फफोले या खुले घाव होना।
- जाँघों की संधि पर सूजी हुई या दर्द युक्त गाँठें
- लैंगिक क्षेत्र में खुजली या झुनझुनी का अहसास
- शरीर पर बिना खुजली के ददोरे
- लैंगिक क्षेत्र में मस्से या फुंसियाँ
- मुंह में घाव
- त्वचा के नीचे गांठें
- फ्लू जैसे लक्षण

स्त्रियों में पाये जाने वाले लक्षण

- अनियमित यौन स्राव
- पेट के निचले भाग या कमर में दर्द
- लैंगिक मार्ग में अनियमित रक्त स्राव
- योनि के आसपास व अंदर जलन एवं खुजली होना
- यौन संपर्क के दौरान दर्द होना।

कुछेक रोगियों खासकर महिलाओं में रोग के कोई संकेत या लक्षण तुरन्त नहीं उभरते हैं। इस प्रकार से वे स्वस्थ दिखते हुए दूसरों को संक्रमित कर सकती हैं। आप किसी भी व्यक्ति को केवल देखकर यह नहीं जान सकते हैं कि उसे एस.टी.डी. है। कोई व्यक्ति एक ही समय पर एक से अधिक एस.टी.डी. रोगों से युक्त हो सकता है।

कोई भी व्यक्ति एक बार में ही संक्रमित व्यक्ति से असुरक्षित यौन संबंध के द्वारा संक्रमित हो सकता है। यदि किसी पुरुष या स्त्री में इनमें से एक या अधिक लक्षण

दिखते हैं तो उसे तुरन्त किसी डाक्टर या स्वास्थ्य कार्यकर्ता से संपर्क करना चाहिए।

यदि गर्भवती माँ को सिफलिस हो तो उसके ये जीवाणु बढ़ते हुए भ्रूण तक पहुँच सकते हैं जिसके कारण गर्भपात, मृत शिशु जन्म, नवजात शिशु मृत्यु या शिशु विकलांगता जैसी बातें हो सकती हैं। इसी प्रकार गर्भवती माँ को गनोरिया होने पर शिशु अंधा हो सकता है और क्लैमाइडिया के संक्रमण से शिशु को निमोनिया हो सकता है।

यदि एस.टी.डी. का उपचार ठीक से न किया जाए तो इससे दीर्घकालिक विकलांगता या मृत्यु भी हो सकती है।

एस.टी.डी. के कारण नपुंसकता या बाँझपन और गर्भाशय ग्रीवा का कैंसर भी हो सकता है।

एस.टी.डी. के कारण एच.आई.वी. के संचार को बढ़ावा मिलता है; क्योंकि एस. टी.डी. के कारण श्लेष्मल झिल्ली, योनि स्राव आदि के द्वारा एड्स आसानी से संचारित हो सकता है। अभी तक एड्स का कोई उपचार नहीं है।

एस.टी.डी. की जांच

विभिन्न जाँचों और परीक्षणों के द्वारा एस.टी.डी. का पता लग सकता है ये परीक्षण सरकारी अस्पतालों व विशेष यौन संचारित रोग के दवाखानों में कराये जा सकते हैं। यह परीक्षण बहुत सस्ते और साधारण हैं।

आमतौर पर प्रचलित एस.टी.डी. के उपचार के लिए सामान्य उपलब्ध दवाइयों का प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। ज्यादातर एस.टी.डी. रोगों का इलाज बिना भर्ती किए हुए किया जा सकता है। ज्यादातर एस.टी.डी. को शुरुआत में ही सही इलाज से ठीक किया जा सकता है। किसी को भी एस.टी.डी. के बारे में छुपाना नहीं चाहिए; क्योंकि उपचार में की गई देरी खतरनाक एवं महंगी साबित हो सकती है। सरकारी अस्पतालों में भी यौन रोगियों का नाम और पता गुप्त रखा जाता है। किसी आधे अधूरे डाक्टर से इलाज कराना खतरनाक हो सकता है।

एस.टी.डी. में स्वयं दवाइयाँ लेना भी खतरनाक है। एस.टी.डी. रोगी को सभी दवाइयां डाक्टर के बताए गए नुस्खे के अनुसार लेनी चाहिए, भले ही रोग के लक्षण समाप्त हो गए हों या अब आपको पहले से बेहतर लग रहा हो।

यदि आप पूरी दवाइयां नहीं लेते तो वे लक्षण कुछ समय बाद पुनः प्रकट हो सकते हैं। जब तक आप अपने डाक्टर के आदेशानुसार दवाइयाँ ले रहे हैं और आपके रोग संबंधी लक्षण खत्म न हो चुके हों तब तक यौन सम्पर्क न स्थापित करें।

(वी.एच.ए.आई द्वारा प्रकाशित पुस्तिका से साभार)

नैतिक पतन का अभिशाप - एड्स

डॉ. गोविन्द प्रसाद उपाध्याय

आज का विश्व एड्स से आतंकित है। इस रोग के सम्बन्ध में जो प्राथमिक आंकड़े आये वे काफी चौंकाने वाले हैं। वर्तमान में एक अनुमान के अनुसार 15 लाख व्यक्ति एड्स से ग्रसित हैं जिनमें 25 हजार रोगी अति गम्भीर रूप से आक्रांत हैं। 10 प्रतिशत रोगी तो अभी पूरे लक्षणों और भयावह स्थिति में पहुंचे हैं, 35 प्रतिशत मध्यम रूप से लक्षण प्रगट कर चुके है और 65 प्रतिशत वाहक मात्र हैं। किन्तु क्रमशः उग्रतम होते जाते इस दीर्घकालीन रोग की मारक शक्ति बहुत चिन्तनीय है। वर्तमान में मृत्यु दर पूर्णतः शत प्रतिशत है। स्पष्टतः मृत्यु का कारण सीधे-सीधे एड्स वाइरस नहीं होता अपितु इनके द्वारा शरीर की "रोग प्रतिरोध शक्ति" के नष्ट या कम हो जाने के कारण रोगाणुओं द्वारा शरीर में कैंसर जैसे घातक रोगों का शरीर के अन्दर पैदा हो जाना और जीवनीय शक्तियों का क्रमशः नष्ट होते जाना, मृत्यु के प्रमुख कारण हैं।

इस रोग का संक्रमण अनेक तरह से हो सकता है किन्तु अनैतिक एवं अप्राकृतिक काम क्रियाओं द्वारा यह सर्वाधिक होता है। 1991 की विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार काम क्रियाओं द्वारा फैलने वाले रोगों से ग्रसित व्यक्ति पूरे विश्व में 20 करोड़ से भी अधिक हैं जिन में 5 करोड़ के लगभग भारत वर्ष में हैं। भारत की सांस्कृतिक विरासत जिसमें चरित्र को बहुत ही महत्व दिया गया है, अनेक दुर्भाग्यों से हमारी रक्षा करती आ रही है और एड्स से भी रक्षा का प्रमुख कवच है। एड्स उत्पत्ति के सहयोगी कारण जो विभिन्न देशों में किये गये सर्वेक्षणों द्वारा सामने आये हैं, बहुत महत्वपूर्ण हैं।

दो बातें हर सर्वेक्षण में उच्चतम प्रतिशत से प्राप्त हुई हैं, अप्राकृत सम्भोग और मादक पदार्थों का सूचीवेध। आयुर्वेद दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या के वर्णन के साथ आचार रसायन अर्थात् व्यक्ति को क्या करना चाहिए इस विधि निषेध का वर्णन विशद रूप से प्रस्तुत करता है।

आयुर्वेद में स्थान - स्थान पर "ओज" शब्द का उल्लेख मिलता हैं। यह ओज तत्व ही व्यक्ति को ओजस्वी बनाता है और रोगों से रक्षा (इम्युनिटी) भी करता है।

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र इन सात धातुओं का परम सार भाग जो तेज स्वरूप है वह मानव शरीर में ओज है। इसे ही आयुर्वेद शास्त्र ने "बल" भी कहा है। इस वर्णन के आधार पर आधुनिक आयुर्वेदज्ञों ने एड्स को ओजक्षय की अवस्था माना है। एड्स के प्रमुख कारणों में मादक द्रव्यों का सेवन है। नशे में व्यक्ति कुछ भी कर डालता है। मादक द्रव्यों के सेवन से चित्त में विकृति के साथ-साथ ओज की विकृति भी होती है।

मद्य के दशगुण, ओज के दशगुणों के विरुद्ध होते हैं इसलिए व्यक्ति मादक द्रव्य सेवन के बाद अपना धैर्य और विवेक खो देता है और आत्मघाती कार्यों में प्रवृत्त होकर एड्स जैसे नारकीय रोग का शिकार हो जाता है।

ऐसे अभिशाप से बचने के लिये तथा स्वस्थ जीवन मूल्यों की पुर्नस्थापना के लिये नैतिकता की प्रासंगिकता और चरित्र की चमक पैदा करना एक राष्ट्रीय आवश्यकता है।

620, नवीन सूभेदार लेआऊट, नागपुर –24

औषधोपयोगी नारियल

डा. मायाराम उनियाल

हरे नारियलों का गुच्छा

भारतीय संस्कृति के प्रतीक एवं औषधीय गुणों से भरपूर नारियल से कौन नहीं परिचित है? नारियल का वृक्ष खजूर एवं ताड़ वृक्ष जैसा सीधा लगभग 40 से 60 फीट तक ऊंचा तथा शाखा रहित होता है। स्त्री तथा पुरुष पुष्प एक ही गुच्छे में पाये जाते हैं। फल 6–10 इंच तक लम्बे, तिकोने, कड़े, रेशेदार और हरे या पीले रंग के छिलके वाले होते हैं। कवच के सिरे पर छेद सा होता है। कवच के भीतर सफेद दूधिया रंग की गिरी होती है। कवच को तोड़ने पर गोला सा निकलता है जिसे खोपरा या गोलागिरी कहते हैं। कच्चे फल को डाभ कहते हैं। नारियल का पानी स्वाद में मीठा होता है। दक्षिण में समुद्र के किनारे–किनारे कच्चे नारियल (डाभ) का पानी सैलानी लोग बड़े चाव से पीते हैं। सामान्य भाषा में इसे खोपरा, गोलागिरी या नारियल कहते हैं। अंग्रेजी में कोकोनट एवं लैटिन में इसे *कोकस न्यूसिफेरा* कहते हैं।

प्राप्ति स्थान

नारियल के वृक्ष समुद्र तटवर्ती प्रदेशों केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आसाम, उड़ीसा, पूर्वी बंगाल, एवं महाराष्ट्र आदि प्रांतों में बहुतायत से पाये जाते हैं। धार्मिक पूजा फलों में नारियल का प्रमुख स्थान है। इसकी ताड़ी या उससे बना मद्य दाहशामक, मूत्रल, नींद को लानेवाला एवं वाजीकर होता है।

नारियल के गुण

नारियल में कई प्रकार के खनिज सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैगनेशियम, विटामिन सी, एवं बी. पाये जाते हैं। कच्चे फल या डाभ का पानी शीतल, मूत्रल, अग्निदीपक, प्यास बुझाने वाला एवं ज्वरनाशक माना जाता है। पैत्तिक विकार एवं मूत्रकृच्छ में भी लाभ करता है। नारियल (गोलागिरी) मधुर, वृष्य, बृंहण, बल्य, एवं वस्ति शोधक माना जाता है। नारियल का तेल केश्य एवं व्रणरोपक होता है। क्षय में इसका उपयोग काडलिवर आयल की तरह होता है। पुष्प ग्राही, शीतल और मलरोधक होते हैं। रोगानुसार नारियल के प्रयोग निम्न हैं :

- गोलागिरी को मिश्री के साथ खाने से गर्भवती स्त्री को कोई कष्ट नहीं होता है। संतान गोरी और पुष्ट होती है।
- नारियल का तेल जले स्थान पर लगाने से विशेष लाभ करता है।
- गर्भस्राव होने की संभावना होने पर नारियल, नर गूलर के फल तथा नागरमोथा सम भाग लेकर सिद्ध क्वाथ पीने से गर्भस्राव रुक जाता है।
- खुजली, फोड़ा–फुंसी एवं चर्म रोगों पर इसके तेल के साथ कपूर मिलाकर लगाने से लाभ होता है।
- श्वास रोग में नारियल जटा की भस्म शहद के साथ 400 मि.ग्रा. में चटाने से लाभ होता है।
- नारियल की ताड़ी, मधुर, मदकारक एवं वीर्यवर्धक होती है। विशूचिका (हैजा) में ताड़ी पिलाने पर लाभ होता है।
- पेट की जलन (अम्लपित्त) में नारियल गुड़ एवं नारियल नमक का प्रयोग विशेष लाभ करता है।

➔

स्वादिष्ट और लाभदायक अमरूद

भारत में अमरूद लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व दक्षिण अमेरिका से आया; यह दक्षिणी अमेरिका का देशज फल है। अब तो सारे भारत में अमरूद होता है; मगर इलाहाबाद का अमरूद अतिविशिष्ट है। यों तो अमरूद बरसात में भी होता है लेकिन जाड़ों में होने वाला अमरूद उत्तम होता है, स्वाद में लाजवाब होता है और मात्रा में भी खूब होता है।

अमरूद में 1.6 प्रतिशत प्रोटीन 0.2 प्रतिशत वसा, 1.01 प्रतिशत कैल्शियम, 0.45 प्रतिशत फास्फोरस, 15 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.3 प्रतिशत विटामिन बी और 0.9 प्रतिशत खनिज लवण होते हैं। ताजे फल में विटामिन सी की अधिकता होती है। अमरूद की विशेषता यह है कि विटामिन सी की अधिकता के बावजूद यह खट्टा नहीं होता। यह विटामिन अमरूद के छिलके में होता है। गूदे में ज्यों–ज्यों गहराई में जाते हैं ग्लूकोज की मात्रा बढ़ती जाती है और विटामिन सी कम होता जाता है।

अमरूद पेट के लिए बहुत ही फायदेमंद है। पेट को साफ रखने और कब्ज दूर करने के लिए यह उत्तम है। यह आंतों को भली प्रकार से साफ करता है। खाना खाने के आधा घंटे बाद काली मिर्च के चूर्ण, सेंधा नमक और नींबू के साथ लगातार तीन दिन अमरूद खाने से पुराना से पुराना कब्ज भी ठीक हो जाता है। मगर कफ प्रकृति के लोगों को जिन्हें सर्दी–जुकाम की शिकायत प्रायः रहती है, कच्चा अमरूद नुकसान करता है। लेकिन अमरूद उनकी शिकायत दूर कर सकता है यदि वे इसे पकाकर बीज निकाल दें और तब कालीमिर्च के चूर्ण और नमक के साथ खायें।

दांत के साधारण दर्द में अमरूद की पत्तियां पानी में उबाल कर उस पानी से गरारा करने से दांत का दर्द जाता रहता है। मुंह में छाले पड़ने पर अमरूद की पत्तियों का रस कत्थे के साथ लगाना चाहिए।

अमरूद ऐसा अकेला फल है जो कब्ज और दस्त दोनों की दवा है। दस्त में इसे मिश्री के साथ खाना चाहिए। लगातार रहने वाले सिरदर्द में अमरूद को सिल पर पीस कर सूर्योदय से पहले माथे पर लगाना चाहिए। एक माह तक लगातार अमरूद खाने से सारे शरीर का रक्त शुद्ध हो जाता है और चर्म रोगों से बचाव हो जाता है।

मसूढ़ों में दर्द और दांत से खून आने पर 500 ग्राम अमरूद के छिलके में 10 ग्राम फिटकरी, 10 ग्राम काली मिर्च और 10 ग्राम सेंधा नमक मिलाकर महीन पीस लें और दिन में दो बार दांतों और मसूड़ों पर मलें।

मधुमेह के रोगियों को बहुत प्यास लगने की दशा में कच्चे अमरूद को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर ताजे पानी में तीन घंटे तक पड़ा रहने दें और यह पानी पिलायें। यह पानी न केवल उनकी प्यास दूर करेगा बल्कि उनकी रक्तशर्करा का स्तर भी कम करेगा।

शहद के साथ अमरूद, खाने से हृदय को बल मिलता है और वह और अच्छा काम करता है।

कुछ अमरूद अंदर से लाल होते हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसंद करते हैं। अमरूद के पेड़ को आंगन में आसानी से उगाया जा सकता है।

➔

- नारिकेलासव का प्रयोग क्षय रोग में वाजीकरण हेतु किया जाता है। वाजीकरण हेतु नारिकेलासव में दालचीनी, नागकेशर, सेमल मूसली, इलायची, केशर एवं कस्तूरी आदि द्रव्य मिलाकर तैयार किया जाता है। यह कामोद्दीपक एवं नपुंसकता नाशक है। इसके सेवन करने से झुर्रियां एवं शिथिलता नष्ट होती है। गर्भवती महिलाओं को प्रति सप्ताह दो–तीन बार पिलाने से सुन्दर गौरवर्ण का बालक पैदा होता है।

निदेशक
भारतीय कायचिकित्सा संस्थान (भारत सरकार) पटियाला - 147001

मूली

संस्कृत ग्रंथों के आधार पर तीनों दोषों को नष्ट करने की प्रतिष्ठा पाने वाले कन्द रूपी जड़ को मूली कहते हैं। यह पूरे भारत में मिलती है। इसके कंद, फूल, बीज सबका साग बनाया जाता है और कच्चा भी खाया जाता है।

भाषावार नाम

संस्कृत : मूलक, **हिन्दी** : मूली, मराठी और **गुजराती** : मूल, **सिन्धी** : मूरी, **बिहारी** : मुरई, **काश्मीरी** : मुझ, **अंग्रेजी** : रैडीश, **लैटिन** : *रेफेनस साटाइवस*

कच्ची कोमल मूली का रस कटुतिक्त, हृद्य, रेचक, दीपन, सर्वदोषहर, लघु और कन्ठ के लिए हितकर है। नर्म मूली तेल आदि में पकाकर खाने से वात, पित्त, कफ तीनों दोषों का नाश करती है सूखी मूली भी तीनों दोषों का शमन करती है। मूली विषघ्न और लघु है।

मूली के फूल, पत्ते और फल क्रमानुसार भारी होते हैं। मूली के फूल कफ और पित्त को दूर करते हैं। इसके फल कफ और वायु का नाश करते हैं। चरक ने लिखा है कि कोमल मूली त्रिदोष हर और पकी मूली त्रिदोष कारक है इस लिये हमेशा कोमल मूली का प्रयोग करना चाहिये। तेल में पका मूली का शाक वात हर और सूखी मूली कफ वात हर है।

औषधीय उपयोग

बवासीर (अर्श) : मूली को सुखाकर चूर्ण बना लें। पोटली में चूर्ण भरकर इससे सेंकना लाभदायक है। सूखी मूली का सूप लेना भी लाभदायक है।

कफज शोथ : मूली के रस को गरम करके सेंकने से कफज शोथ (सूजन) में लाभ होता है।

हिचकी और स्वास : सूखी मूली का सूप पिलाने से हिचकी और स्वास में आराम मिलता है। मूली का साग वात विकार के कारण पैदा खांसी में लाभदायक है।

कान दर्द : मूली का रस गरम करके कान में डालने से कान का दर्द ठीक हो जाता है।

ज्वर : नरम मूली का यूष (पानी का साथ उबाल कर निकाला रस) कफ और वातज ज्वर में लाभदायक है।

वैद्य रमाकान्त मणि

पित्ती : शीत पित्ती उभरने पर सूखी मूली का यूष भोजन के साथ लेने से लाभ होता है।

हैजा : कच्ची मूली का काढ़ा छोटी पिपली का चूर्ण मिला कर लेने से हैजे में लाभदायक है।

पीलिया : मूली का रस पीलिया के लिए बहुत उत्तम औषध है। ताजे मुलायम मूली के रस में चीनी मिलाकर दस से बीस ग्राम तक रस एक बार में लिया जा सकता है। यदि मूली का ताजा रस न मिल सके तो मूली के बीज का चूर्ण तीन से छ माशे तक एक बार में चीनी मिलाकर लिया जा सकता है।

46/19, विष्णुपुरी, कानपुर

मसालों के औषधीय गुण

गरम मसाला, जो भारतीय व्यंजनों में पड़ता है, उन्हें स्वादिष्ट एवं सुगंधित बनाता है, साथ ही हमारे स्वास्थ्य को भी संरक्षित करता है। इसके प्रत्येक घटक औषधीय गुणों से भरपूर हैं। किंतु इसका प्रयोग कम मात्रा में करना चाहिए। इसके प्रमुख घटकों के संबंध में विशेष विवरण नीचे दिया जा रहा है:

दालचीनी

दालचीनी का वानस्पतिक नाम **सिनेमोमम जीलेनिकम** है। अंग्रेजी में इसे सिनेमन बार्क कहते हैं। यह वृक्ष की शाखाओं तथा नये प्ररोहों की आंतरिक छाल होती है जिसकी मोटाई 0.2 से 1.0 मिमी. तक होती है भारत में प्रयोग में लाये जाने वाले दालचीनी में 0.5 से 1.0 प्रतिशत वाष्पशील तेल होता है। इसमें रोगाणुनाशी गुण भी होते है।

बड़ी इलायची

बड़ी इलायची का वानस्पतिक नाम एमोमम सुबुलेटम है। अंग्रेजी में इसे 'ग्रेटर कार्डेमोम' कहते है। बड़ी इलायची का स्वाद तेज तथा अच्छा होता है। यह हृदय तथा यकृत को बल देती है। यह भूख बढ़ाती है। इसके खाने से डकारें आती है। बड़ी इलायची का छिलका सिरदर्द दूर करने वाला तथा दांतों के लिए अच्छा होता है। यह मुखशोथ दूर करती है। बड़ी इलायची के बीजों का काढ़ा दांत और मसूड़ों में संक्रमण ठीक करने के लिये उपयोग में लाया जाता है।

लौंग

लौंग का वानस्पतिक नाम यूजेनिया कैरियोफिलस है। अंग्रेजी में इसे 'क्लोव' के नाम से जाना जाता है। लौंग वास्तव में सूखी हुई (बिना खुली) कलिकाऐं हैं। लौंग अत्यन्त सुगंधित होती है। लौंग से प्राप्त होने वाले सगंध तेल को भिन्न–भिन्न प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। यह उद्दीपक होती है तथा पान में डालकर चबाने के काम आती है। औषधियों में इसका वातहर के रूप में भरपूर प्रयोग किया जाता है। लौंग पाचक होती है तथा पूतिरोधी व जीवाणुरोधी होने के कारण इसे दांत के दर्द में इस्तेमाल किया जाता है।

पीपल

पीपल (पीपर या पीपरी) का वानस्पतिक नाम पाइपर लौंगम है। अंग्रेजी में इसे 'लॉग पेपर' के नाम से जाना जाता है। पीपल वास्तव में शुष्क फल है। इसमें उपस्थित ऐल्कलॉयड जीवाणुरोधी होता है। पीपल का स्वाद तीखा होता है। इसके खाने से लार आने लगती है। इसमें अनेक औषधीय गुण होते हैं। इसे खांसी, ब्रौंकाइटिस तथा दमा जैसे श्वसन, खांसी रोगों में प्रयोग में लाया जाता है। यह वातहर होती है और पित्त–विरेचक भी होती है।

तेजपात

तेजपात का वानस्पतिक नाम **सिनेमोमम** तमाला है। अंग्रेजी में इसे "इण्डियन सिनेमन" कहते है। यह वृक्ष की पत्तियां होती हैं। इन्हें मुख्य रूप से मसाले की तरह प्रयोग में लाया जाता है। तेजपात वातहर होता है और इसे पेट दर्द तथा दस्तों में प्रयोग में लाया जाता है।

तेजपात के वृक्ष की छाल दालचीनी की तुलना में मोटी होती है तथा इसे दालचीनी में मिलावट के लिये भी इस्तेमाल किया जाता है।

काली मिर्च

इसका वानस्पतिक नाम है **पाइपर निगरम**। अंग्रेजी में इसे "ब्लैक पेपर" के नाम से जाना जाता है। काली मिर्च वास्तव में ब्लैक पेपर के पूर्णविकसित पर कच्चे बीजों को सुखाकर तैयार

की जाती है। इसे विभिन्न मसालों में प्रयोग में लाया जाता है। अत्यन्त चरपरी होने के साथ–साथ यह सगंध होती है। इसे उद्दीपक के रूप में, ज्वर के बाद होने वाली दुर्बलता में तथा मलेरिया में कालिक ज्वररोधी की भांति प्रयोग में लाया जाता है।

जीरा

जीरे का वानस्पतिक नाम **क्यूमिनम सायमिनम** है। अंग्रेजी में यह "क्यूमिन सीड" के नाम से जाना जाता है। जीरा स्वाद में तिक्त तथा सगध होता है। जीरा एक ऐसा मसाला है जो लगभग सभी सब्जियों में डाला जाता है। प्राचीन समय से ही जीरे को उद्दीपक, वातहर, पाचक तथा कषाय समझा जाता है। इसे अपच तथा अतिसार में प्रयोग में लाया जाता है आजकल तो पशुओं के लिये तैयार की जाने वाली औषधियों में भी इसका उपयोग किया जाता है। इससे वाष्पशील तेल, प्राप्त किया जाता है।

सोंठ

सोंठ को अदरक, जिसका वानस्पतिक नाम **जिनजीबर ऑफिसिनेल** है, के प्रंकदों से सुखाकर तैयार किया जाता है। इससे पाचन ठीक होता है, भूख लगती है तथा गैस की शिकायत दूर होती है।

प्याज के औषधीय उपयोग

डा. अरुण प्रकाश

भारत में प्याज की खेती प्रायः सर्वत्र होती है। इसका पौधा 12 इंच से 18 इंच तक लम्बा होता है। इस पौधे का कन्द ही प्याज के नाम से अधिकतर प्रयोग किया जाता है। यह महाराष्ट्र में भारत के अन्य भागों की अपेक्षा ज्यादा ही पैदा होता है। दुनिया में प्याज की लगभग 500 से अधिक जातियां पायी जाती हैं। यह रंग भेद से सफेद, लाल, हरा एवम् पीला होता है। इसमें एक उग्र गंध वाला कटु तैल, गन्धक, कैल्शियम, लौह, प्रोटीन, शर्करा एवम् अनेक विटामिन भी पाये जाते है। इसके बाहरी छिलके में केसेंटीन नामक पीला रंजक पदार्थ होता है।

आयुर्वेद मतानुसार यह किंचित उष्ण, कफ निःसारक, उत्तेजक, बल्य, मूत्र जनन, आर्तव जनन, अग्नि वर्द्धक, अनुलोमक एवम् उत्तम वातहर है। इसके उचित प्रयोग से कफ ढीला होकर निकलने लगता है। जिसके साथ दूषित पित्त भी बाहर निकल जाता है।

औषधीय उपयोग

- एक चम्मच प्याज का रस गैर–बराबर शहद एवम् घी के साथ सेवन करने से वाजीकरण होता है।
- प्याज को नमक के साथ चबा–चबा कर खाने से मसूढ़ों की सूजन एवम् दर्द में आराम मिलता है।
- प्याज की पुल्टिस बना कर बाँधने से एवम् घी–हल्दी के साथ भून, ऊपर से सोंठ, मरीच, भुनी हर्र का चूर्ण यथावश्यक मात्रा में छिड़ककर सेवन करने से गठिया में आराम मिलता है।
- विसूचिका रोग के होने पर प्याज का रस एवम् चूने का पानी मिलाकर सेवन करने से आराम मिलता है।
- कीड़ों के द्वारा काटने पर प्याज का रस लगाने से दर्द ठीक होता है। गांठ, फोड़े, व्रण आदि पर बांधने से आराम होता है। नक्सीर फूटने पर प्याज रस नाक में डालने से लाभ होता है।
- कान के दर्द में प्याज का रस गरम कर मोटे वस्त्र से छानकर डालने से आराम मिलता है।

अहित प्रभाव

प्याज–मेधा (याददश्त) के लिए हानिकारक है। इसके अति प्रयोग से स्मरण शक्ति का ह्रास होता है और यह 'क्रोध' को बढ़ाता है।

आयुर्वेद महाविद्यालय, हनुमान नगर, नागपुर

लाभदायक गुडूची (गुरिच)

वैद्य रमाकान्त मणि, कानपुर

संस्कृत में इसके दो नाम, अमृता और गुडूची प्रसिद्ध हैं। **हिंदी** में इसे गिलोय या गुरिच कहते हैं। इसे **बंगला** में गुलच, **मराठी** में गुलवेल, **कोंकणी** में गुरुडवेल **गुजराती** में गलो और गुलवेल, **सिंधी** में गडू, **कन्नड** में अमृतवल्ली, **तेलुगु** में तिफतिगे, **मलयालम** में चिट्टामृतम और **लैटिन** में *टिनोस्पोरा* कार्डिफोलिया कहते हैं।

वानस्पतिक परिचय

यह औषधि सर्वत्र उत्पन्न होती है। इसके डंठल एवं पत्तों को औषधि रूप में प्रयोग किया जाता है। इस औषधि का संग्रह काल ग्रीष्म ऋतु अर्थात् वर्षाकाल से पहले है। यह बहुवर्षायु तथा मांसल और बड़े वृक्ष पर चढ़ने वाली लता होती है। पत्ते हृदयाकार होते हैं। इसके फूल छोटे होते हैं और पीले रंग के गुच्छों में लगते हैं। फल छोटे तथा पकने पर लाल रंग के होते हैं। तने को काटने पर अन्दर का भाग चक्राकार होता है, अतः इसका नाम चक्रिका भी है। लता का टुकड़ा जमीन में लगा देने से दूसरा पौधा निकल आता है और वह बढ़ने लगता है। नीम के वृक्ष पर चढ़ी गुरिच अति उत्तम मानी जाती है।

औषधीय गुण तथा उपयोग

गुडूची संग्राहिक, वातहर, दीपनीय, श्लेष्म, शोणित, कब्ज शमनकारी है अर्थात् इनको दूर करती है। आयुर्वेद के ग्रन्थकारों ने इसे रसायन एवं जीवनीय माना है।

गुडूची पाक में मधुर रसायन लघु, बलकारी, अग्निप्रदीपक, त्रिदोष आम, प्यास, दाह, प्रमेह, कास, पाण्डुरोग, पीलिया, कुष्ठरोग, वातरक्त कृमि, ज्वर तथा छर्दि का नाश करती है।

गुरिच सत्व, मधुर, लघु, दीपन, चक्षुष्य, धातुओं की वृद्धि करने वाला मेध्य और वयःस्थापन कारी है।

अमृता का सत्व निकाला जाता है जो चूर्ण रूप में प्रयुक्त होता है। सत्व के लिये ताजी और मोटी गुरिच के तने लेकर उनका पतला बाहरी छिलका निकाल कर छोटे टुकड़े करके, कुचल कर पानी में रात भर भिगो कर खूब मसल कर रख लिया जाता है। कुछ समय बाद पानी के नीचे सफेद रंग का सत्व बैठ जाता है तब पानी धीरे से निथारकर फेंक देते हैं। नीचे बैठे सत्व को खुरच कर सुखा कर रख लिया जाता है। यही गिलोय सत्व है।

चूर्ण बनाने के लिए तने को छोटे छोटे टुकड़े कर स्वच्छ कर सूख जाने पर कूट लेते हैं। इससे हरे रंग का चूर्ण बन जाता है। चूर्ण बनाने के लिए ऊपर की त्वचा निकाल लेना चाहिए। अमृता का चूर्ण, अरिष्ट एवं वटी तथा क्वाथ बना कर औषधि रूप में प्रयोग किया जाता है।

गिलोय घी के अनुपान से लेने से वायु को, गुड़ के अनुपान के साथ सेवन करने से कब्ज को, मिश्री के साथ खाने से पित्त को, शहद के साथ प्रयोग करने से, कफ को, तथा सोंठ के साथ खाने से आमवात को नष्ट करती है।

रसायन के लिए – गुरिच का स्वरस रसायन के रूप में प्रयोग होता है।

विषम ज्वर : गुरिच का स्वरस शहद के साथ प्रयोग करने से विषम ज्वर में लाभ होता है।

पीलिया : गिलोय का स्वरस शहद के साथ पीना बहुत लाभदायक है।

(शेष पृष्ठ 56 पर)

करेले के औषधीय उपयोग

डा. प्रकाश कुमार 'आलोक'

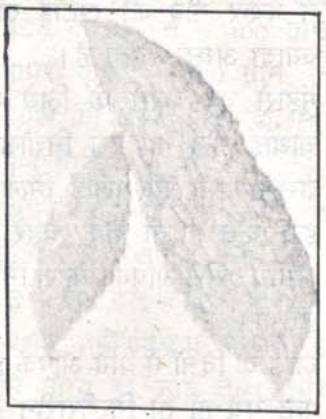

करेले को **संस्कृत** में कारवेल्लक, **बंगाली** में उच्छे, **मराठी** में कारलें, **गुजराती** में कारेला, **मलयालम** में पेरुंपावल और **लैटिन** में *मेमोर्डिका कारंटिआ* कहते हैं। करेले को सब्जी के रूप में तो सभी प्रयोग में लाते हैं। लेकिन इसकी उपयोगिता यहीं तक सीमित नहीं है। आयरन, विटामिन 'ए', 'बी' और 'सी' से समृद्ध करेला कई रोगों की अति उत्तम औषधि भी है। आयुर्वेद के अनुसार यह वातानुलोमक, वाजीकर, नाड़ीबलदायक, दीपन, कफछेदन और उदरकृमिनाशक है। आयुर्वेद में तो इसके अनेक रोगों में प्रयोग बताये गए हैं जिनमें मधुमेह, गठिया, पीलिया, चर्मरोग, जलोदर प्रमुख हैं। आइये, हम आपको करेले के औषधीय उपयोगों की जानकारी दें–

मधुमेह

करेले के टुकड़ों को छाया में सुखा कर महीन पीस कर छान लें। रोजाना दो बार एक–एक चम्मच की मात्रा में पानी के साथ सेवन करने से मधुमेह में लाभ होता है। स्मरण रहे कि आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों ने भी मधुमेह में करेले के गुणकारी होने की पुष्टि की है।

गठिया

करेले का रस आधा से एक कप रोजाना दो दफा पिया करें साथ ही इसके रस को गर्म करके प्रभावित स्थान पर मालिश करें। इन दो प्रयोगों से गठिया से काफी हद तक राहत मिल जाएगी।

मूत्र पथरी

करेले के हरे पत्तों का रस निकाल कर आधा कप की मात्रा में रोजाना पीने से और करेले की सब्जी बना कर खाने से छोटी–छोटी मूत्र पथरी गल कर पेशाब के जरिए बाहर निकल जाती है।

आंत्र कृमि

पेट में कीड़े हो गए हों तो करेले को कूट कर इसका रस निकाल कर कुछ दिनों तक सेवन करें। कृमि खत्म हो जायेंगे। दवा लेने के समय और बाद में भी यथासम्भव गुड़ और मिठाई का प्रयोग न करें।

खूनी बवासीर

करेला अथवा इसके पत्तों का रस निकाल कर मिश्री मिला कर रोजाना दो तीन बार पीने से खूनी बवासीर में फायदा होता है।

पीलिया

करेले के पत्तों का रस दो–दो चम्मच की मात्रा में हरड़ के चूर्ण के साथ मिलाकर रोजाना दो बार पिलायें। जब आंखों का पीलापन समाप्त हो जाए तो रस देना बंद कर दें।

जलोदर

जलोदर के रोगियों को करेले का रस निकाल कर एक कप की मात्रा में पीना चाहिए। इससे यकृत दोष मिटेगा साथ ही वृक्क की क्रिया बढ़ कर जलोदर रोग की शांति होगी।

जल जाने पर

जले स्थान पर तुरन्त करेले का रस रुई के फाहे से लगायें। इससे जलन की शांति होगी, फफोले भी नहीं पड़ेंगे और जख्म भी बढ़ने न पाएगा।

(पृष्ठ 54 का शेष)

वातरक्त : अमृता के रस में दूध और एरंड का तेल डाल कर पकावें, जल का भाग जल जाने पर तेल वातरक्त में प्रयोग किया जाता है।

स्तन शुद्धि : स्तन में कोई रोग अथवा कष्ट हो तो गुरिच का काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिये।

हलीमक रोग पर : गुडूची का रस 40 ग्राम, भैंस का दूध 160 ग्राम और घी 10 ग्राम लें। सबको इकट्ठा कर इन सबका घी बना कर 10 ग्राम प्रति खुराक प्रयोग करने से हलीमक रोगों में लाभ होता है।

वातज रक्त प्रदर : गुडूची का स्वरस पिलाना लाभदायक है।

साधारण ज्वर – इसके पत्तों की सब्जी बना कर खाने से साधारण ज्वर ठीक हो जाता है।

पीलपॉव : गुडूची का स्वरस तिल के तेल के साथ सेवन कराने से पील पांव में आराम होता है।

नेत्र रोग : अच्छी ताजी गुरूच का 90 ग्राम रस लेकर उसमें एक ग्राम शहद और एक ग्राम सेन्धा नमक डाल कर अच्छी तरह मिला कर आंख में डालें। नियमित प्रयोग करने से नेत्र रोगों में लाभदायक है।

गुरिच और त्रिफला के क्वाथ में पीपर और शहद मिला कर नियमित पीने से सब प्रकार की आखों की व्यथाएं दूर होती हैं।

प्रमेह : अमृता स्वरस और शहद मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से हर प्रकार का प्रमेह नष्ट होता है।

गुणकारी नींबू के घरेलू इलाज

नींबू एक ऐसा फल है जो भारत के सभी भागों में बारह मास उपलब्ध रहता है। आमतौर पर हमारे अधिकांश घर के सदस्यों को इसके गुणों की जानकारी नहीं होती है जबकि छोटी–छोटी बीमारियों में इसका प्रयोग किया जा सकता है:

- मोटापा दूर करने के लिये प्रातः उठते ही एक गिलास पानी में एक नींबू के रस के दो चम्मच या एक पीला नींबू निचोड़कर शहद में मिलाकर पीना चाहिये।
- कब्ज की शिकायत होने पर नियमित हल्के गर्म पानी में नींबू डालकर व कुछ नमक डालकर पीना चाहिये इसके अलावा नींबू में शहद मिलाकर पीना भी अच्छा रहता है।
- जो लोग चाय की आदत से छुटकारा पाना चाहते हें उन्हें चाहियें प्रातः उठने के बाद मुंह आदि साफ करके गुनगुने पानी में नींबू निचोड़कर पियें इससे पेट भी अच्छा रहता है।
- दस्त लग रहे हों तो दूध में ताजे नींबू का रस निचोड़कर तीन चार दिन तक पीना चाहिए।
- बवासीर की शिकायत होने पर प्रातःकाल गाय के ताजा दूध में एक नींबू का रस निचोड़कर पिला दें दो तीन में आराम हो जाता है।
- गर्भकाल में महिलायें खटाई खाने की शौकीन होती हैं इस दृष्टि से इमली या टाटरी, अमचूर इत्यादि न देकर नींबू की खटाई खाना ज्यादा अच्छा रहता है।
- मुंहासे दूर करने के लिये एक चौथाई नींबू का रस निचोड़कर उसमें थोड़ी सी मलाई मिला लें इसे कुछ दिनों तक चेहरे पर लगायें इससे आपका चेहरा निखर उठेगा।
- जाड़े के दिनों में यदि आपके होंठ फट गये हों तो गिलीसरीन नींबू व गुलाबजल तीनों का मिश्रण तैयार करें व त्वचा पर लगायें। यह मिश्रण होंठों, हाथों की कुहनियों पावों की एड़ियों इत्यादि सख्त स्थानों पर भी लगाना चाहिये।
- पानी में नींबू का रस डालकर कुल्ली करने से मुंह की बदबू दूर हो जाती है।
- शीतल जल में नींबू का रस व शहद डालकर पीने से गर्मी में राहत मिलती है, उल्टी व दस्त की शिकायत हो तो भी आराम मिलता है। कमजोर दिल वालों को नींबू का शर्बत पीना चाहिए।
- खाना खाने के पहले एक गिलास पानी में एक नींबू का रस पीने से भूख खुलकर लगती है।
- जो बच्चे दूध उलटते हैं, पानी में थोड़ा नींबू का रस मिला कर देने से वह नहीं उलटेंगे।

स्वयं बनायें

कास नाशक वटी

लौंग – 100 ग्राम
कालीमिर्च – 100 ग्राम
बहेड़े के छिलके – 100 ग्राम
पापरी कत्था – 300 ग्राम
बबूल की छाल – 2 किलो

निर्माण विधि

पहले बबूल को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर चौगुने पानी में खूब उबालें। पानी एक चौथाई रहने पर काढ़े को छान लें। इस काढ़े में शेष घटकों का चूर्ण मिलाकर धीरे–धीरे धीमी आंच पर पकाते रहें। जब यह गाढ़ा गोली बनाने योग्य हो जाय तब उतार कर ठण्डा होने पर गोलियां बनावें। इनको धूप में सुखाकर शीशियों में भर लें।

गुण धर्म

यह सभी प्रकार की खांसी में लाभकारी औषधि है।

मात्रा

1–1 गोली दिन में तीन–चार बार चूसें।

धातु पौष्टिक चूर्ण

नागौरी असगन्ध – 100 ग्राम
विधारा – 100 ग्राम
सेमल मूसली – 100 ग्राम
मिश्री – 300 ग्राम

निर्माण विधि

सभी चीजों का महीन चूर्ण कर आपस में अच्छी तरह मिला लें।

गुण धर्म

वलवीर्य वर्धक, शुक्रमेह व स्वप्नदोष नाशक है। वीर्य का पतलापन दूर करता है। जाड़े के मौसम में प्रयोग करने के लिये बहुत उत्तम है। इससे शरीर की पुष्टि भी होती है।

मात्रा

10 ग्राम चूर्ण सुबह शाम एक पाव दूध से लें।

रोग एवं ज्योतिष

कन्या राशि

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे

ग्रह पथ पर कन्या राशि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मंडल के अन्तिम तीन चतुर्थांश अर्थात् तीन चौथाई हिस्सों, संपूर्ण हस्त नक्षत्रमंडल और चित्रा नक्षत्रमंडल के पहले आधे भाग तक फैली हुई है। कन्या राशि में काल पुरुष की कमर का हिस्सा अवस्थित है। कन्या राशि का स्वामी बुध है। इस राशि की यह विशेषता है कि इसके पहले पन्द्रह अंशों तक बुध का उच्च स्थान है, सोलह से बीस अंश तक का क्षेत्र बुध का मूल त्रिकोण है और इक्कीस से तीस अंश तक बुध का स्वगृह माना जाता है। कन्या नाशि के प्रथम से सत्ताईस अंश तक शुक्र का नीच क्षेत्र है। कन्या राशि शीर्षोदय राशि है तथा सर्वथा निर्मल है। मनुष्यों पर इस राशि का प्रभाव अधिक है। कन्या राशि स्त्रीलिंगी और द्विस्वभाव की है। कन्या राशि में पृथ्वीतत्व बहुत है। दक्षिण दिशा में इसका प्रभाव परिक्षित होता है। कन्या राशि की प्रकृति सौम्य है और यह रात्रि में बलवती होती है। इसकी कान्ति रूक्ष और वर्ण चित्र अर्थात् अनेक रंगों से युक्त है। कन्याराशि के प्रभाव से शरीर दीर्घ होता है। इस राशि वाले व्यक्ति का वर्ण न अधिक काला और न अधिक गोरा होता है। शरीर सौष्ठवयुक्त, दृष्टि सौम्य और गंभीर तथा सलज्ज होता है। ऐसे व्यक्ति स्वभावतः सत्यभाषी और धर्मिक प्रवृत्ति के होते हैं।

कन्या राशि कटि प्रदेश, पेट, नाभि तथा पेट के अन्दरूनी अवयव, बड़ी आंतों और छोटी आंतों तथा मेरुदण्ड के निचले हिस्से को प्रभावित करती है। अतः दूषित अवस्था में उक्त अवयवों से संबंधित रोग संभावित है। अग्नि तत्व से संबंधित औषधि योजना कन्या राशि से संबंधितं दोषों पर उपयोगी होती है।

अर्बुद

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे

अर्बुद के कई अर्थ हैं। अर्बुद आबू पहाड़ का नाम है। सामान्यतया अर्बुद शब्द का अर्थ है ऊंचा स्थान। सुश्रुत शारीर 3।18 में अर्बुद शब्द दूसरे मास के नपुंसक गर्भ के आकार के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आयुर्वेद में अर्बुद रोग विशेष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसमें उत्सेध यानी ग्रन्थि में सूजन होती है। ग्रन्थि और अर्बुद दोनों प्रायः एक ही प्रकार के रोग हैं परन्तु अर्बुद विशेषतः आकार में बड़ा होता है। अतः ग्रन्थि और अर्बुद दोनों के विवरण एक साथ दिये जा रहे हैं।

ग्रन्थि (गांठ) का तात्पर्य है ऊपर उठी हुई सूजन। आयुर्वेद के अनुसार ग्रन्थि का स्थान रोहिणी नामक त्वचा में होता है। कफादि मल मेद, मांस और रक्त में पहुंचकर उन्हें दूषित करते हैं और गोल, ऊपर उठी हुई सूजन उत्पन्न करते हैं। ग्रन्थि 9 प्रकार की होती है वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, शिरा और व्रणज।

वातज ग्रन्थि में सूजन फैलती जाती है। सुई की चुभन की तरह पीड़ा, काला रंग, एक स्थान से दूसरे स्थान में परिवर्तन, अचानक वृद्धि और कमी, नरम और फूली हुई और फूटने पर स्वच्छ रक्त का निकलना वातज ग्रन्थि के लक्षण हैं।

पित्तज ग्रन्थि में जलन, लाल–पीला रंग, शीघ्र पकना, फूटने पर अति उष्ण स्राव आदि लक्षण होते हैं।

कफज ग्रन्थि में प्रायः पीड़ा नहीं होती। यह ठोस, ठंडी, त्वचा के रंग की, खुजलीयुक्त होती हैं फूटने पर इसमें से गाढ़ा मवाद निकलता है।

रक्तज ग्रन्थि में कुपित दोष रक्त को दूषित कर शिरास्नायुओं का आश्रय लेकर ग्रन्थि का निर्माण करते हैं। ऐसी ग्रन्थि में शून्यता, दाह, शीघ्र पकना आदि लक्षण होते हैं और फूटने पर उष्ण रक्त स्राव होता है।

मांसज ग्रन्थि प्रायः अधिक मांसाहार करने के कारण मांसधातु के दूषित होने पर पैदा होती है। यह स्निग्ध, आकार में बड़ी, कवर, शिराओं से व्याप्त, कफज ग्रन्थि के लक्षणों से युक्त, शीतल, त्वचा के रंग की और कंडू (खुजली) युक्त होती है। फूटने पर मांसज ग्रन्थि से गाढ़ा मवाद निकलता है।

मेदोज ग्रन्थि – आहार में मेद बढ़ाने वाले पदार्थो की अधिकता होने पर मेद त्वचा या मांस में पहुंचकर ग्रन्थि का रूप धारण करता है। यह ग्रन्थि अति स्निग्ध, नरम, चल, कफज ग्रन्थि के लक्षणों से युक्त, शरीर में मेदवृद्धि के साथ बढ़ती है और मेद क्षीण होने पर आकार में छोटी हो जाती है। इसके फूटने पर गाढ़ा, लाल–सफेद–काला मेदस्त्राव होता है।

अस्थिज ग्रन्थि – हड्डी टूटने या हड्डी पर आघात लगने से हड्डी ऊंची–नीची हो जाती है और ग्रन्थि का निर्माण करती है।

सिराज ग्रन्थि – बहुत अधिक पैदल चलने के तुरन्त बाद ठंढे पानी से नहाने अथवा अत्यन्त श्रम के कारण वायु कुपित होकर रक्त के सहयोग से सिराओं को छिन्न–विछिन्न, संकुचित, टेढ़ी–मेढ़ी और शुष्क कर ग्रन्थि का निर्माण करता है। इस ग्रन्थि में स्फुरण या पीड़ा नहीं होती।

व्रणज ग्रन्थि – व्रण (चोट) होने पर कुपथ्य से या व्रण की पट्टी ठीक न बांधने पर अथवा किसी अंग पर आघात होने से कुपित व्रण से निकलने वाले रक्त को सुंखाकर व्रण को ग्रन्थि जैसा बना देना है। व्रणज ग्रन्थि दाह (जलन) और कंडू (खुजली) युक्त होती है।

उपर्युक्त में से वातज, पित्तज, कफज, रक्तज और मेदोज ग्रन्थि साध्य हैं तथापि मर्मस्थान, गले और पेट में उत्पन्न ग्रन्थि असाध्य समझी जाती है।

ग्रन्थि का उपचार जोंक से रक्त मोक्षण, चीरफाड़, भेदन और अग्निकर्म द्वारा बताया गया है।

अर्बुद – सुश्रुत के अनुसार कुपित दोष शरीर के किसी भी भाग में मांस धातु को दूषित कर ग्रन्थि के समान सूजन पैदा करते हैं। इस सूजन का स्थान रोहिणी त्वचा है। यह गांठ मांस से युक्त, गोल, स्थिर, मन्द, वेदनायुक्त और बहुत समय तक बढ़ने वाली और न पकने वाली होती है, जिसे अर्बुद कहते हैं। इसकी जड़ बड़ी और विस्तृत होती है। स्थिर स्वभाव के कारण अर्बुद पकता नहीं तथा कफादिक दोष और मेद धातु की अधिकता तथा उनके एक स्थान पर जमाव होने से अर्बुद का आकार बड़ा हो जाता है। अर्बुद वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मांसज और मेदोज छः प्रकार के बताये गये हैं। इन में से वातज, पित्तज, कफज और मेदोज अर्बुद के वही लक्षण हैं जो वातज आदि ग्रन्थि के संबंध में ऊपर दिये गये हैं।

रक्तार्बुद – कुपित दोष रक्त को दूषित कर शिराओं को संकुचित करते हैं और मांसाकुरों से युक्त शीघ्र बढ़ने वाला मांसपिण्ड उत्पन्न करने हैं, जिसमें से रक्तस्राव होता है। रक्त का स्राव होने से रक्तक्षय और पांडुरोग भी उत्पन्न हो जाते हैं इसलिए रक्तार्बुद को असाध्य समझा जाता है। प्रायः तालु में रक्तार्बुद होता है, जिसका आकार कमल के समान होता है। मांसांकुर ऊपर आ जाते हैं और उनमें से रक्तस्राव होता रहता है। रक्तस्राव से पांडुरोग भी हो जाता है। यह तालुगत रक्तार्बुद कफ और रक्त की दुष्टि से होता है और असाध्य है।

शेष पृष्ठ 61 पर

समस्यायें आपकी : समाधान हमारे

मेरी उम्र 36 साल की है। मुझे दोपहर और रात में खाना खाने के बाद गले तथा पेट में दाह–जलन, खट्टी डकारें व गैस जैसी परेशानियां होती हैं। मेरा यह विश्वास है कि आपके पास इसका कोई उपचार अवश्य होगा।

मनोहर जोशी, नैनीताल

आप सुबह शाम एक एक चम्मच (3–3 ग्राम) शिवापाचक क्षार पानी के साथ लें। आमलकी चूर्ण व मुलेठी चूर्ण बराबर बराबर मात्रा में मिला कर रख लें जिसका 1–1 चम्मच खाने के एक घंटे के बाद दूध से 3 बार लें। खाने के तुरन्त बाद 2–2 गोली चित्रकादि वटी दो बार पानी से लें। कड़ुआ तेल, लाल मिर्च, खटाई, अरहर उड़द न खायें।

जीवनीय धमार्थ चिकित्सालय

विगत रामनवमी से जीवनीय धमार्थ चिकित्सालय कार्यरत है। आप अपनी कोई भी स्वास्थ्य समस्या हमारे वैद्यों द्वारा समाधान के लिये भेज सकते हैं। हम पत्रिका के माध्यम से इन समस्याओं के उत्तर देते हैं। कुछ पाठक अपनी स्वास्थ्य समस्याओं का उत्तर पत्र द्वारा चाहते हैं। ऐसा कर पाना फिलहाल हमारे लिये संभव नहीं है। यदि आप चाहें तो आपका नाम व पता गुप्त रखा जा सकता है। आप हमारे चिकित्सालय हेतु तैयार करायी गई औषधियां भी मंगवा सकते हैं। ये औषधियां सर्वोत्तम औषध सामग्री से हमने स्वयं तैयार की हैं तथा लागत मूल्य पर सेवा भाव से भेजी जा सकती हैं।

❖

मैं 28 साल की एक विवाहित युवती हूँ। मेरी एक 4 साल की बेटी है। मेरी यह समस्या है कि इधर लगभग दो साल से मेरे दोनों पैरों में घुटने के नीचे वाले हिस्से में सूजन आ जाती है और खुजली भी होती है। क्या मुझे इस तकलीफ से छुटकारा मिल सकता है?

श्रीमती सरिता चौधरी, लखनऊ

आप गोक्षुरादि गुग्गुल और चन्द्रप्रभावटी की 1–1 गोली मिलाकर शहद के साथ तीन बार लें। थोड़ी देर बाद पुर्ननवासव 20–20 एम.एल. उतना ही पानी मिला कर दिन में दो बार लें। चावल, दही, गुड़, उड़द की दाल, खटाई न खायें।

❖

मेरी आयु लगभग 50 वर्ष की है। इधर लगभग 6 महीनों के समय में मैं दो बार पीलिया से पीड़ित हो चुका हूँ। क्या आयुर्वेद में कोई औषधि है जिससे कि पीलिया की रोकथाम सम्भव हो।

कैलाश श्रीवास्तव, बरेली

आप आरोग्यवर्धनी वटी 2 गोली और कुटकी चूर्ण आधा चम्मच खाने के आधा घंटे बाद दूध से लें। खाने के तुरन्त बाद कुमार्यासव 20 एम.एल. उतना ही पानी मिलाकर रोज दो बार लें। कड़ुआ तेल, सिरका, अचार, खटाई, तली चीजें, लाल मिर्च अधिक चिकनाई, मांस, मछली, अन्डा न खायें।

❖

मेरा एक 11 साल का बेटा है। वह बहुत कमजोर है और उसे अनाज खाना बिल्कुल

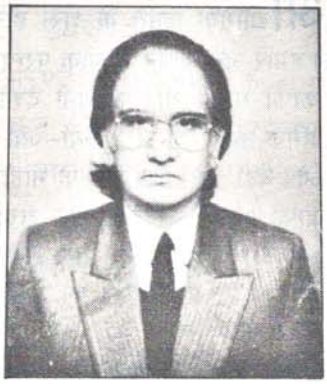

वैद्य सुल्तान अली खा

पसन्द नहीं, है। उसके पेट में दाहिनी तरफ प्रायः तेज दर्द होता है। बहुत से डाक्टरों का इलाज कर चुके हैं। लेकिन लाभ नहीं हुआ है। क्या आपके पास इसका कोई उपचार है?

मीता चौरासिया, इलाहाबाद

आपने बहुत संक्षेप में रोगी का हाल लिखा है इससे रोग निश्चय होना मुश्किल है। उदर शूल की सामान्य दवायें लिख रहा हूँ, प्रयोग कराकर हाल लिखें या किसी कुशल वैद्य को दिखाकर चिकित्सा करायें।

आप एक गोली कांकायन वटी, शूल हरण योग एक वटी तथा आधा चम्मच सोंठ का चूर्ण गुनगुने पानी से दो बार दें ऊपर से तुरन्त सहजन की छाल का काढ़ा 25 एम.एल. पिलाएं। 25 ग्राम सहजन की छाल 250 एम.एल. जल में पकायें, चौथाई शेष रहने पर छान कर दो बार में पिला दें। एक सप्ताह में लाभ न होने पर चिकित्सक को दिखाकर दवा लें।

दारूल हबीब रशीद
चौथी मंजिल, चिकमण्डी
लखनऊ, फोन : 229489

स्वास्थ्य रक्षा में महिलाओं का महत्व

औद्योगिक क्रांति के शुरू होने से पहले हमारे जन जीवन में लोक परम्पराओं का काफी महत्व था। पश्चिमी देशों की औद्योगिक क्रांति की लहर ज्यों–ज्यों पूरब की ओर बढ़ी वैसे–वैसे यहां के माहौल में भी काफी परिवर्तन दिखाई देने लगा।

अंग्रेजी दवाओं के आ जाने पर बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं पर इन्हीं का वर्चस्व छा गया और स्वास्थ्य रक्षा के जितने भी पारम्परिक तरीके चले आ रहे थे, उन सब को गहरा धक्का लगा। खासकर पारम्परिक रूप में महिलाएं स्वास्थ्य रक्षा के जिस महान कार्य को करती आ रही थीं, उसे एकदम भुला दिया गया।

अब इस बात को तेजी से महसूस किया जाने लगा है कि यदि हमें अपनी पारम्परिक संस्कृति को बचाये रखना है, तो हमें स्वास्थ्य रक्षा से जुड़ी महिलाओं की सेवाओं को पुनः वही गरिमापूर्ण स्थान देना होगा। ये महिलाएं हमारे समाज में दादी, नानी, मां, चाची, अथवा सास के रूप में कोई भी हो सकती हैं। ऐसी महिलाएं पारम्परिक रूप से हर किसी परिवार में स्वास्थ्य संबंधी देखरेख के मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आयी हैं और आगे भी निभाती रहेंगी। नवजात पीढ़ी को इन्हीं महिलाओं से स्वास्थ्य सुरक्षा संबंधी जानकारी प्राप्त होती है। दूरदराज के ऐसे क्षेत्रों में जहां–डाक्टर, नर्स नहीं पहुंच पाते हैं, परिवार की बूढ़ी महिलाएं ही अपने बुद्धि कौशल का परिचय देती हुई बीमारों की देखभाल व इलाज करती हैं।

आश्चर्य इस बात का है कि इस तरह की महिलाओं को हमारे समाज में अभी तक सिर्फ दाई के रूप में ही मान्यता मिल पायी है, जो कि प्रसव के दौरान ग्रामीण महिलाओं का प्रसव सम्पन्न कराती हैं। एक कुशल चिकित्सक के गुण भी उनमें मौजूद होते हैं पर इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता है।

पारिवारिक सदस्यों की स्वास्थ्य रक्षा और उनकी देखभाल में महिलाएं अपने–अपने घरों में एकमात्र प्रहरी होती हैं। उनका काम परिवार के सदस्यों को खाना खिलाने से लेकर, बीमारों की देखभाल तक रहता है, लेकिन उनके इस ज्ञान को लोग इस लिए महत्व नहीं देते, क्योंकि अक्सर उनके इस काम को उनकी रोजमर्रा की दिनचर्या का ही एक अंग मान लिया जाता है। इधर छोटे परिवारों का चलन बढ़ जाने से क्योंकि अब बड़ी–बूढ़ी महिलाएं परिवार में कम दिखने लगी हैं, और किसी सदस्य के बीमार पड़ने पर अब उसका इलाज आधुनिक चिकित्सा पद्धति के डाक्टर ही करते हैं फलस्वरूप सांस्कृतिक अलगाव पैदा होने से आधुनिक चिकित्सा पद्धति को अनावश्यक प्रश्रय मिलता जा रहा है।

जो ग्रामीण महिलाएं चिकित्सक के बतौर जानी जाती हैं, उनमें कुछ सांप काटने का इलाज, कुछ आंखव और त्वचा के रोगों को ठीक करने वाली, कुछ दांतों को उखाड़ने में माहिर और कुछ हड्डियों को बिठाने वाली होती हैं। इन महिला चिकित्सकों का इलाज ज्यादातर जड़ी–बूटी पद्धति पर आधारित होता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी स्तर पर बहुत कम महिला डाक्टर और नर्स होती हैं, ये डाक्टर और नर्से भी प्राइमरी हेल्थ सेंटर तक ही सीमित होती है, लिहाजा दूर–दराज के गांवों तक इनकी पहुंच बहुत कम होती हैं। अलग सामाजिक परिवेश और राजनैतिक स्थितियों के कारण भी प्राइमरी हेल्थ सेंटर के डाक्टर और नर्स ग्रामीण जनता की समुचित सेवा नहीं कर पाते हैं। सरकारी डाक्टर और नर्सो का ज्यादातर काम टीकाकरण, दवाओं के स्टाक की जांच, प्रसव कराना और दंपतियों को परिवार नियोजन की सलाह देने तक ही सीमित रहता है। सरकारी डाक्टर और नर्स क्योंकि ग्रामीण जनता के बीच इलाज और तीमारदारी का काम ठीक से नहीं करते हैं, इसलिए जनता का विश्वास इन पर से उठ जाता है।

सबके लिए स्वास्थ्य योजना के तहत लोकस्वास्थ्य परम्परा संवर्द्धन समिति ने यह महसूस किया है कि यदि ग्रामीण महिलाओं को स्वास्थ्य रक्षक के रूप में प्रभावी तौर पर स्वीकार कर लिया जाय तो इनकी सेवाओं से स्थानीय जनता काफी लाभ उठा सकती है।

खासकर ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे दूर दराज के इलाकों में, जहां आमतौर पर डाक्टरों की पहुंच संभव नहीं है, वहां स्थानीय महिलाएं स्वास्थ्य रक्षा के लिए काफी लाभदायक हो सकती हैं। बशर्ते आधुनिक शिक्षा प्रणाली के डाक्टर भी इन्हें मान्यता प्रदान करें, लेकिन अभी तक पश्चिमी शिक्षा आधारित चिकित्सा पद्धति के चलते ऐसी महिलाओं को कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है।

लोक स्वास्थ्य परम्परा संर्वद्धन समिति ने स्थानीय महिलाओं को स्वास्थ्य रक्षा के क्षेत्र में मान्यता दिलाने के इरादे से हाल ही में व्यापक सर्वेक्षण कार्य कराया। इस कार्य में अहमदाबाद की चेतना संस्था ने भी उसकी मदद की। इन दोनों संस्थाओं ने सर्वेक्षण के बाद जो रिपोर्ट तैयार की है, उसे पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित कराया गया है। इस पुस्तक का नाम 'हर हीलिंग हैरिटेज' (घर की पुश्स्तैनी डाक्टर) है। पुस्तक का संयोजन वैद्य स्मिता वाजपेयी ने किया है और संपादन डाक्टर मीरा सद्गोपाल नें किया है।

त्रिदिवसीय अंतराष्ट्रीय आयुर्वेद सम्मेलन - 97

भविष्य की औषधियों हेतु आयुर्वेद और एलोपैथी में संवाद

सरकारी तंत्र द्वारा निरन्तर उपेक्षा झेलते हुये भी आज आयुर्वेद भारत की बहुसंख्यक जनता की सेवा कर रहा है। एक समय में आयुर्वेद ने लगभग सभी चिकित्सा पद्धतियों जैसे यूनानी, सिद्ध, तिब्बती, चीनी और एलोपैथी पर बहुत प्रभाव डाला पर पिछली कई शताब्दियों से इसका विकास कुंठित हो गया था। इसका एक कारण आयुर्वेद का अंतर्मुखी होते जाना और दूसरी पैथियों से संवाद का अभाव रहा हैं। इस संवाद के अभाव ने संभवतः आयुर्वेद और एलोपैथी, दोनों को कमजोर किया है।

यह सम्मेलन आयुर्वेद और एलोपैथी पद्धतियों में प्रभावी संवाद विकसित करने के उद्देश्य से 31 जनवरी 1997 से 2 फरवरी 97 तक संजय गांधी परास्नातक चिकित्सा संस्थान लखनऊ में आयोजित किया जा रहा है। इस सम्मेलन का प्रायोजन जैव तकनीकी और चिकित्सा विज्ञान की अत्याधुनिक तकनीक का प्रयोग कर आयुर्वेद को समृद्ध करके भविष्य की औषधियों के प्रति प्रतिबद्ध बायो–वेड फार्मास्यूटिकल्स (प्रा.) लि. द्वारा किया जा रहा है। लखनऊ स्थित केन्द्रीय औषध अनुसंधान संस्थान और पूना विश्वविद्यालय के स्वास्थ्य विज्ञान विद्यालय इस आयोजन में सहायता कर रहे हैं तथा प्रायोजक बायो–वेड फार्मास्यूटिकल्स की तरफ से जीवनीय सोसायटी इस सम्मेलन के आयोजन में सक्रिय योगदान कर रही है।

इस सम्मेलन में आयुर्वेद और एलोपैथी के बीच संवाद विकसित करने के मूलभूत सिद्धान्त और इनकी दिशा तथा भविष्य में चिकित्सा जगत के सम्मुख आने वाली चुनौतियों पर विचार विमर्श को केन्द्रित किया जायगा। इस सम्मेलन में देश और विदेश के प्रख्यात वैद्यों तथा डाक्टरों के भाग लेने की आशा है। सम्मेलन का समापन सत्र तथा औषधीय पौधों पर प्रदर्शनी का आयोजन केन्द्रीय औषध शोध संस्थान में करने का सुझाव है तथा शेष कार्यक्रम संजय गांधी संस्थान में होंगे।

सम्मेलन की तैयारी और उसे सुचारू रूप से चलाने के लिये कई समितियों का गठन कर लिया गया है। इनमें कैलीफोर्निया की डा. दीपा चित्रे, पुणे के वैद्य बी.पी. नानल तथा डा. भूषण पटवर्धन, कोटक्कल के वैद्य पी.के. वैरियर, मद्रास के प्रो. नटराजन, बम्बई के प्रो. आर. डी. लेले, वाराणसी के प्रो. आर.एच.सिंह, पीलीभीत के प्रो.एस.के मिश्र तथा लखनऊ से डा. नित्यानंद, प्रो. बी.एन. धावन, प्रो. एस.आर. नाइक, प्रो. रजनी गुजराल और डा. वी.पी. कम्बोज आदि सम्मिलित हैं।

सम्मेलन में शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली औषधियों, रसायन औषधियों तथा गठिया पर विशेष रूप से चर्चा की जाएगी।

आशा है इस सम्मेलन द्वारा आयुर्वेद और एलोपैथी में प्रभावी संवाद विकसित होगा जिससे दोनों ही पद्धतियां समृद्ध होंगी। सम्मेलन मानवजाति के स्वास्थ्य पर हमला कर रहे नये और पुराने रोगों के लिये भविष्य में भी उपयोग लायक औषधि योजनायें बनाने में अन्य फार्मास्यूटिकल कंपनियों को भी प्रेरणा देगा।

पृष्ठ 58 का शेष

मांसार्बुद – शरीर पर आघात लगने से उस भाग का मांस दूषित होकर त्वचा के रंग का, स्निग्ध, वेदना विहीन, पत्थर के समान कठिन, स्थिर और न पकने वाली सूजन के रूप में मांसार्बुद का निर्माण करता है। निरन्तर अतिशय मांसाहार करने वाले व्यक्ति की मांसधातु दुष्ट होकर मांसार्बुद उत्पन्न कर सकती है।

वातज, पित्तज, कफज और मेदोज अर्बुद साध्य श्रेणी में होते हुए भी यदि अधिक प्रसरणशील हो जायं या गर्भस्थान अथवा स्रोतस् में हों, स्थिर हों और एक अर्बुद होते हुए उसपर पुनः उत्पन्न हों तो असाध्य समझे जाते हैं। अर्बुद कपाल, तालु, नाक, पलक और अन्य नियत स्थानों पर होते हैं।

अर्बुद का उपचार सुश्रुत के अनुसार छेदन है। सभी प्रकार के अर्बुदों को छेद्य बताया गया है। अर्बुद को मूलसहित निकालना चाहिए अन्यथा मूल में अल्प अंश भी शेष रहे तो यह पुनः उत्पन्न हो जाता है। अर्बुद के लिए अग्निकर्म चिकित्सा भी बताई गई है।

सबको आरोग्य और प्रसन्नता

डा. बी. एम. हेगडे, मंगलोर

प्रस्तुत रचना डाक्टर बेल्ले मोनप्पा हेगड़े, डीन, कस्तूरबा मेडिकल कालेज, मंगलोर की लोकप्रिय अंग्रेजी पुस्तक 'हेल्थ ऐंड हैपीनेस' का हिन्दी सार-संक्षेप है। डा. हेगड़े अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के हृदय रोग विशेषज्ञ और चिकित्सा विषयक अनेक लोकप्रिय पुस्तकों के रचयिता हैं। अंग्रेजी पुस्तक की पृष्ठ संख्या 173 है, जिसमें चिकित्सा के अनेक विषयों पर डाक्टर हेगड़े के 42 लेख संकलित है। पुस्तक तीन खंडों - चिकित्सा की राजनीति, चिकित्सा-दर्शन और चिकित्सा-कला-में विभक्त है। पुस्तक का प्रकाशन कारपोरेशन बैंक इकोनामिक डेवलपमेंट फाउंडेशन, मंगलोर ने किया है।

संपादक

स्वास्थ्य शिक्षण के नाम पर आजकल आरोग्य और उसके संरक्षण पर ध्यान देने के बजाय रोग और उनसे बचाव पर ही बल दिया जाता है। चूंकि मूलतः चिंता ही वह तत्व है जिससे रोग उत्पन्न होते है अतः उसे दूर करना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम लोगों के सामने आरोग्य और उसके रहस्यों को उजागर करें।

दुनिया में स्वस्थ आबादी की तुलना में बीमार आबादी बहुत कम है। किसी भी कालबिंदु पर दुनिया के बीमारों की संख्या कुछ करोड़ से अधिक नहीं हो सकती है जबकि ऐसे स्वस्थ लोगों की संख्या अरबों में होगी जिनके प्रायः जीवन भर स्वस्थ रहने की संभावना हो। गणित के औसत के नियम के अनुसार किसी गंभीर बीमारी का शिकार हुए बगैर इस धरती पर सुख से रहने और रोटी-रोजी कमाने के हमारे सुअवसर अधिक है।

आजकल पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहा स्वास्थ्य साहित्य इतना डरावना है कि उससे लोगों की कोई सहायता तो होती नहीं उल्टे मनोरोगों की वृद्धि हो रही है। साधारण आदमी हर समय किसी न किसी बीमारी से डरा रहता है। भय की यह भावना ही रोग उत्पन्न कर समाज को बीमार करती है। जबकि तथ्य यह है कि बीमारी विरले ही होती है, दुनिया तंदुरुस्ती के नियम से चल रही है, न कि बीमारी के नियम से। बीमारी दुर्भाग्यपूर्ण अपवाद है और संयोग से है। रोग केवल इत्तेफाक से होते हैं और चिंता करके उनसे बच पाना संभव नहीं। कृपया सदा याद रखें कि स्वस्थ रहना ही हमारी नियति है, बीमार रहना नहीं। मनुष्य की सभी बुराइयों के विरुद्ध प्रसन्नता ही सबसे अच्छा टीका है।

'ही हू लाफ्स लास्टस' (जो हंसता है वही टिकता है) यह अंग्रेजी मुहावरा अक्षरशः सही है। हमारे पास ऐसे आंकड़े मौजूद है जिनसे ज्ञात होता है कि दिल खोलकर हँसने से पीडा और कष्ट को दूर करने के लिए आवश्यक एंडोर्फिन का स्राव शुरू होता है। स्वास्थ्यकर कैटेकोलैमाइनों के स्राव को भी हँसी प्रेरित करती है।

मजे की बात यह है कि खुले दिल से वही हँस सकता है जिसका दिल साफ हो और जो दयालु हो। ऐसे भी लोग हैं जो दूसरों को मुसीबत में देखकर हँसते हैं। इस प्रकार की विद्रूप हँसी एंडोर्फिनों के स्राव को उत्तेजित नहीं करती। इस तरह की हँसी का सबसे अच्छा नमूना अफ्रीका की कुछ जनजातियों में पाया जाता है जो अपने ही कबीले के किसी सदस्य के मगरमच्छ की गिरफ्त में पड़ जाने पर उसकी छटपटाहट देखकर हँसते हैं।

प्रसन्नता मन की एक अदा है। परोपकार भाव से भरा मन यदि सभी नहीं तो अधिकांश अपहासी (डिजनरेटिव) रोगों के विरुद्ध, जिनमें कैंसर और हार्ट अटैक सम्मिलित है, सबसे असरदार टीका है।

हंसी ने आजतक जितनी जानें बचायी है उतनी जानें चिकित्सा जगत अपनी समस्त उच्च तकनीकी विधियों के बावजूद नहीं बचा सका है। अच्छा चिकित्सक वही हो सकता है जो खुद खुलकर हँस सके और दूसरों को भी अपने साथ हँसा सके। ऐसा वही कर सकता है जिसका मन साफ हो और सबके प्रति संवेदना से भरा हो।

मनुष्य जाति के साथ रोगों का रिश्ता सृष्टि के प्रारंभ से है और संभवतः कोई भी रोग नया नहीं है। प्रचार माध्यम समय-समय पर इस या उस महामारी के बारे में भले ही इसके विपरीत लिखा करें।

आजकल डाक्टरों की सबसे बड़ी चिंता का विषय यह है कि विशेष रूप से, हमारे बड़े-बड़े अस्पतालों के सघन सावधानी कक्षों में, यदि सभी 500 ऐंटीबायोटिकों के प्रति नहीं, तो अधिकांश के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न हो चुका है। उनकी चिंता का दूसरा कारण यह है कि कोई भी बड़ी बहुराष्ट्रीय

कंपनी नये एंटीबायोटिकों के खोज के प्रति कतई उत्साहित नहीं है क्योंकि उसमें प्रारंभ में भारी व्यय की आवश्यकता पड़ती है।

अधिकांश खतरनाक बीमारियों का सबसे महत्वपूर्ण कारण गरीबी है, यह भी सिद्ध हो चुका है। अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि हमारे भावी जीवन और स्वास्थ्य का निर्णय हमारी माताओं की गर्भावस्था से पूर्व और गर्भावस्था में पोषण से हो चुका होता है। गर्भ से ही कुपोषित बच्ची कमजोर स्त्री बनती है और इस कारण उसके बच्चे भी कमजोर होते हैं। समृद्ध लोगों की तुलना में गरीब तबका हार्ट अटैक और कैंसर जैसी अपहासी बीमारियों सहित सभी बीमारियों से अधिक ग्रस्त है।

प्रत्येक रोगी अपने शरीर में अपना डाक्टर साथ रखता है। चिकित्सक को चाहिए कि उस डाक्टर को अपना काम करने दे।

व्यक्ति तभी स्वस्थ रह सकता है जब उसके परिवेश से उसके मन का शांतिपूर्ण सामंजस्य हो। इस शांति के साथ ही दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है।

बोरिस येल्तसिन का विमान आयरलैंड में, काउंटी क्लेयर के आसमान पर चक्कर लगा रहा था, नीचे आयरलैंड का प्रधानमंत्री अपने सहयोगियों के साथ येल्तसिन के विमान के नीचे उतरने की प्रतीक्षा कर रहा था। विमान में येल्तसिन का एक सहायक उनके मुंह पर बर्फीले ठंडे पानी के छींटें मारते हुए कह रहा था, 'अध्यक्ष महोदय, उठिये।' अध्यक्ष महोदय भालू की तरह गुर्राते हैं लेकिन उनकी नींद नहीं टूटती। अंततोगत्वा यह यात्रा रद करनी पड़ती है और अध्यक्ष महोदय का विमान मास्को लौट जाता है क्योंकि उन्हें जीवित रखने के लिए थोड़ी वोदका और चाहिए। द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में विस्टन चर्चिल प्रतिदिन पूरी एक बोतल शराब पी जाते थे और उन्हें कभी-कभी युद्ध मंत्रालय से धुत नशे की अवस्था में घर पहुचाना पडता था।

शराब मनुष्य के दिमाग को बुरी से बुरी अवस्था जैसे आक्रमण, अवसाद और अत्यन्त असंबद्ध चिंतन की स्थिति में पहुचा सकती है। मानसिक रूप से असंतुलित राष्ट्रनायकों ने कितनी जानें ली हैं इसका लेखा-जोखा अत्यंत दुखदायी है।

अमरीकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन (भू. पू.) की यह घोषणा कि वे आल्सहाइमर रोग से ग्रस्त हैं, महाभयंकर बात है। नीरो जब सम्राट बना तो उसकी उम्र मात्र सत्रह वर्ष थी। रोमन साम्राज्य में उससे क्रूर शासक नहीं हुआ। वह अवश्य ही अवसादी पागलपन का रोगी था। कहा जाता है कि उसने स्वयं रोम में आग लगवा दी थी कि बाद में उसकी योजनानुसार भव्य नवनिर्माण किया जा सके। जब हजारों बच्चे बूढ़े स्त्री-पुरुष जल रहे थे त्राहि-त्राहि मची थी वह अपना बाजा लायर बजा रहा था। इसी बात से कहावत बन गई कि रोम जल रहा था और नीरो बांसुरी बजा रहा था बहरहाल, अंत में उसने आत्महत्या कर ली।

डाक्टरों और चिकित्साशास्त्रों को मानवीय मामलों में सक्रिय और जीवंत भाग लेना है। वे बिरले ही नीरोग कर पाते हैं, ज्यादातर तसल्ली देते हैं लेकिन ढाढस हमेशा देते हैं। कहा गया है:

हम हैं डाक्टर और ईश्वर दोनों के भक्त
हमेशा नहीं, केवल संकट के वक्त
संकट के जाते ही दोनों को देते दिमाग से निकाल
ईश्वर को भूल, डाक्टर को जाते टाल

इस दुनिया में सभी लोगों के लिए पर्याप्त अन्न है, लेकिन आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा उसका न्यायोचित वितरण न होने के कारण भूखो मर रहा है। एक नयी सामाजिक व्यवस्था होनी चाहिए जो सारे संसार को समग्र रूप में देख सके। प्रजातंत्र को योग्यतातंत्र का आदर करना चाहिए और जनता के द्वारा चुनी हुई सरकार को जरूरत मंद लोगों के लिए काम करते हुए सभी लोगों की सचमुच रक्षा करनी चाहिए।

जीवनीय चंदे की दरें

	व्यक्तिगत (रुपये)	संस्थागत (रुपये)
वार्षिक	75	140
द्वैवार्षिक	140	250
त्रैवार्षिक	200	350
आजीवन	650	x x

जीवनीय ग्राहक चंदा अनुरोध कार्ड

कृपया मुझे एक/दो/तीन वर्ष/जीवन भर के लिए जीवनीय द्वैमासिक का ग्राहक बनाकर यह हिन्दी/अंग्रेजी पत्रिका निम्न पते पर भिजवाने का कष्ट करें। मै चन्दे की सहयोग राशि रु. ..... ड्राफ्ट (नं. .....)/धनादेश द्वारा प्रेषित कर रहा हूँ।

नाम : _____

पता : _____

पिन : भवदीय

पाठकों की प्रतिक्रिया

"जीवनीय" वर्षा-शरद 96 का अंक देखने के बाद में लगता है कि अभी भी जीवनीय प्रकाशन करने का मंतव्य स्पष्ट नहीं है। बताया तो यह गया है कि "जीवनीय" के माध्यम से पारम्परिक घरेलू चिकित्सा पर जोर दिया जायेगा। इससे कई प्रकार की सामान्य बीमारियां ऐसी घरेलू दवाइयों से ठीक हो सकेंगी। अगर इस मन्तव्य से इस अंक के लेख देखे जाएं तो इसमें कई खामियां नजर आती हैं। वैद्य रमाकांत मणि का लेख नाक, कान और गले की सामान्य बीमारियों पर है जिसमें अनेक प्रकार की बीमारियों का वर्णन है। पर एक भी घरेलू इलाज का तरीका या दवाई नहीं बताई गई है। वैसे तो बीमारियों के ऊपर कई पोथे लिखे जा सकते हैं। वैद्य रमेश नानल का नाक की बीमारियों पर ऐसा ही लेख है जिसमें कोई भी घरेलू चिकित्सा नहीं बताई गई है, न कोई पथ्य-अपथ्य पर विचार। जुकाम पर आधुनिक दृष्टिकोण का लेख छपा है जिसमें इसका कारण वायरस भी बताया गया है और यहां तक मना किया गया है कि नाक को जुकाम के समय छिनकना भी नहीं चाहिए। इसकी जगह आयुर्वेद के सामान्य सिद्धान्त हैं कि सर्दी-जुकाम का मूल कारण पेट की खराबी है। इस लिए हलका जुलाब और सामान्य गरम तासीर की चीजें जैसे गरम पानी, चाय, अदरक, हल्दी इत्यादि से बहुत जल्द राहत मिलती है।

डॉ एस.पी. अग्रवाल का बच्चों के कान में सूजन पर लेख है जिसमें यहां तक मना किया गया है कि कान में तेल नहीं डालना चाहिए। इसकी जगह बाकी सभी लेख जो आयुर्वेद के सिद्धान्त पर हैं इस बात पर जोर देते हैं कि विविध तेल व रस डालने से कान की बीमारियां व दर्द दूर होते हैं। यह आश्चर्य है कि आज हजारों साल से जो पद्धति चल रही है और जिसका लाभ सामने दिख रहा है इसके लिए आधुनिकता के नाम से मनाही की जा रही है और कई प्रकार की एन्टीबायटिक दवाइयां देकर भयंकर उत्पात खड़े किये जा रहे हैं आधुनिकता के नाम पर आजकल सभी डॉ. आँखों में काजल लगाने की भी मनाही करते हैं जो कि हजारों साल से इस देश में प्रचलित है। सामान्य काजल आँख की सुंदरता के लिए या साफ करने के लिए प्रयोग में लाये जाते रहे हैं और नीम के तेल की लौ से बने काजल कई प्रकार के नेत्रों के रोग दूर करते हैं।

यह सभी उदाहरण देने का मकसद यही है कि अगर सभी जीवनीय के स्पष्ट मन्तव्य सामने रखें तो इस प्रकार के लेख इस पुस्तिका में छपने ही नहीं चाहिए।

कृष्ण कुमार सोमानी, मुंबई

'जीवनीय' में छपने वाले सभी–लेख विशुद्ध रूप से आयुर्वेद के पक्ष में ही प्रकाशित किये जांय, ऐसा हम जरूरी नहीं मानते, यद्यपि हमारा जोर अधिकतर इसी बात पर होता है कि देशी चिकित्सा पद्धतियों व घरेलू उपचार को बढ़ावा मिले। कान, नाक, व गले वाले अंक में कुछ लेख एलोपेथी चिकित्सा पद्धति पर भी दिये गये हैं। क्योंकि 'जीवनीय' के पाठकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो आयुर्वेद एवं पाश्चात्य इन दोनों चिकित्सा पद्धतियों के लेख पढ़कर अपनी जानकारी बढ़ाना चाहता है। हर चिकित्सा पद्धति की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। आपके ही तर्क के अनुसार भी यदि आधुनिक एलोपैथी इतनी तेजी से आगे बढ़ी है तो उसमें कुछ निहित शक्ति भी होगी। चिकित्सा पद्धतियों के इतिहास में भी विश्व के अलग–अलग देशों में विकसित पद्धतियों में कुछ अंतर रहे हैं। सभी की अपनी कुछ सीमाएं भी हो सकती हैं। आधुनिक एलोपैथी की सीमाएं है जिसमें संभवतः सबसे बड़ी कमजोरी व इसकी शक्ति इसकी सार्व भौमिकता है जो सभी को एक ही तराजू पर तौलने के साथ–साथ बाजार व्यवस्था की हामी है। दरअसल जीवनीय सिद्धांततः किसी भी चिकित्सा पद्धति के खिलाफ नहीं है। हमारा मानना है कि विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के बीच एक दूसरे को समृद्ध करने के इरादे से यदि आपसी विचार विमर्श होता है, तो इससे प्रत्येक पद्धति लाभान्वित होगी। इसीलिए आवश्यकतानुसार हम 'जीवनीय' में आयुर्वेद के साथ–साथ एलोपैथिक व होम्योपैथी चिकित्सा पद्धतियों के भी लेख आमंत्रित करते हैं। हम चाहते हैं कि भविष्य में चिकित्सा पद्धतियों के आपसी लेन–देन से ऐसी स्वास्थ्य–चिकित्सा प्रणाली विकसित हो सके जो जन–जन के कल्याण की हो। इस दिशा में हम अपने सुधी पाठकों एवं विद्वान लेखकों की ओर से और अधिक सुस्पष्ट विचार जानना चाहेंगे।

संपादक

दुधारू पशु एवं दूध

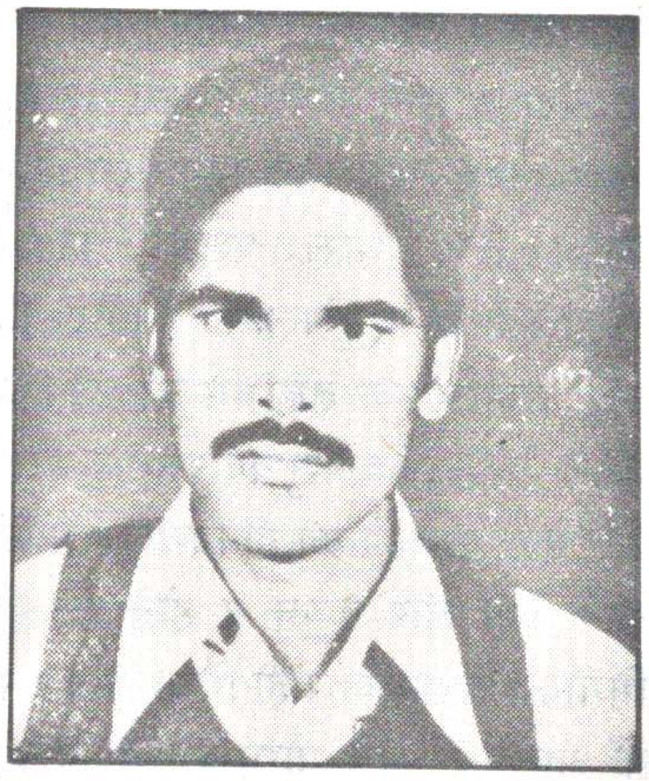

डा. कमाल अहमद सिद्दीकी

भारत एक कृषि प्रधान देश है और कृषि के आधार हैं, पशु, जिनका भारतीय अर्थव्यवस्था में एक विशिष्ट स्थान है। विभिन्न कृषि कार्यो में जहाँ एक ओर नर पशुओं का महत्व है वहीं पर दूसरी ओर मादा पशुओं द्वारा दुग्ध उत्पादन किया जाता है। गाय और भैंस मुख्य रूप से दुग्ध उत्पादन के स्रोत है। यहाँ की जल–वायु में गायों का पालन–पोषण करना अधिक आसान है इसलिये पशु पालक गायों में अधिक रुचि रखते हैं। भारत जैसे देश में दूध का महत्व कुछ अधिक ही है क्योंकि यहां की अधिकांश आबादी शाकाहारी है और मात्र दूध ही इनके लिए पशु प्रोटीन का स्रोत है। यहाँ पर उपलब्ध कुल दूध का लगभग 60 प्रतिशत भाग घी, मक्खन, क्रीम, पनीर, खोया, छेना आदि के रूप में प्रयोग किया जाता है जबकि बाकी 40 प्रतिशत दूध खाने या पीने के रूप में प्रयोग किया जाता है। विश्व के 20 प्रतिशत दुधारू पशु भारत में ही पाये जाते हैं परंतु यहाँ का दुग्ध उत्पादन विश्व का मात्र 6 प्रतिशत ही है। इसका मुख्य कारण है भारत में विकसित नस्लों वाले पशुओं का अभाव तथा उनके खाद्य और स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही यहाँ प्रति व्यक्ति को औसतन केवल 114 ग्राम दूध प्रतिदिन प्राप्त हो पाता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 283 ग्राम दूध की आवश्यकता होती है। हमारे शास्त्रों में दूध को अमृत की संज्ञा दी गयी है। दूध में मानव शरीर के लिए आवश्यक समस्त पोषण सामग्री मौजूद है ऐसे में दुधारू पशु के रख–रखाव, उनके खाद्य और स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यक सावधानियों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये ताकि इस दूध की कमी न होने पाये।

पशु शाला – दुधारू पशुओं के उत्तम स्वास्थ्य और पुष्टता का रहस्य कुछ हद तक उचित वास स्थान, उत्तम देखभाल, सफाई, स्नान तथा चरागाहों में टहलने पर निर्भर करता है। पशुओं के रहने का स्थान या पशुशाला बहुत ही साफ–सुथरा, खुला–हवादार और प्रकाश वाला होना चाहिए। छोटी, बन्द, अन्धेरी कोठरियाँ दुधारू पशुओं के लिए कदापि उपयुक्त नहीं होते।

पशुशाला पृथ्वी से 10–12 सेमी. ऊँची पक्की, चिकनी तथा ढलुआ फर्श वाली होनी चाहिए जिससे धोने पर समस्त गन्दगी आसानी से बह सके। पशुशाला में रोशनदान ऊँचाई पर लगे होने चाहिए जिनसे होकर प्रकाश तथा शुद्ध ताजी वायु तो आ सके परन्तु धूल भरी तेज हवा या वर्षा का जल अन्दर न आ सके। पशुशाला में पक्की निकास नाली का होना आवश्यक है जिससे हो कर मूत्र आदि आसानी से बाहर निकल सके। पशुओं को साफ–सुथरी हल्की रस्सियों या जंजीरों से इस प्रकार बाँधा जाना चाहिए कि उन्हें साँस लेने या खाने में किसी प्रकार की असुविधा न हो। पशुशाला में चारा, गोबर, मूत्र या अन्य किसी प्रकार की गन्दगी इकट्ठा न होने दें और सफाई रखें।

अत्यधिक जाड़े के दिनों को छोड़ कर दूध देने वाले पशु को प्रति दिन स्वच्छ पानी से स्नान कराना चाहिए। गर्मी के दिनों में

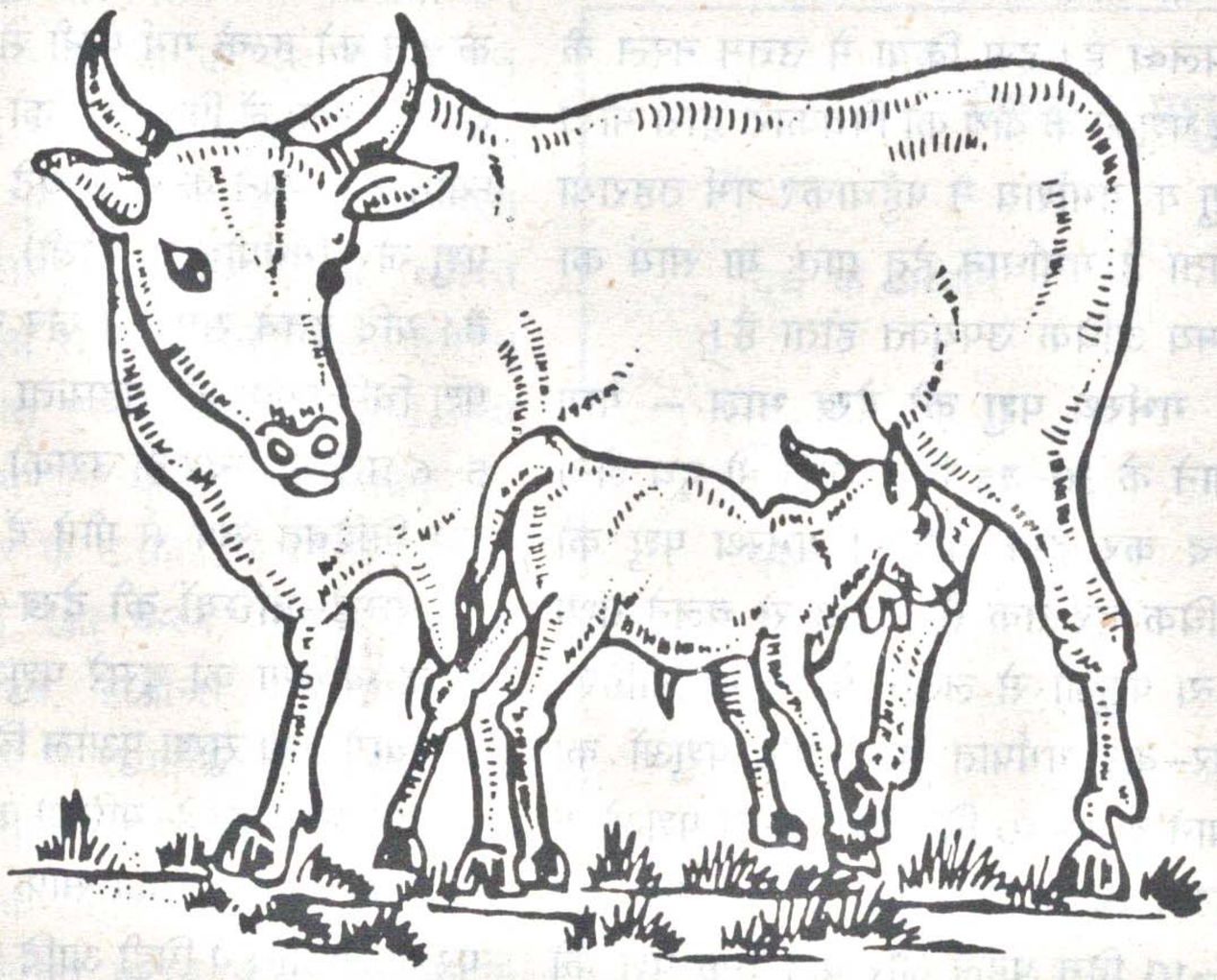

चारे के नाद की सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए इसमे खराब और सड़ा चारा या भूसा कभी नहीं डालना चाहिए। पशुओं को यथासंभव प्रतिदिन स्वतन्त्र रूप से खुले चरागाह में टहलाना चाहिए।

पशु चारा – अच्छे भोजन पर ही पशु का स्वास्थ्य एवं दुग्ध उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। दुधारू पशुओं को सदैव सन्तुलित चारा खिलाना चाहिए जिसमें उन्हें सभी पोषक तत्व मिलते रहें। प्रयास करना चाहिए कि पशु को रसदार हरा चारा और ऐसी वस्तुओं को ही दिया जाय जो पेट साफ रखे और कब्ज न होने दें। दाना भिगोकर या पीसकर ही दिया जाय। पशुओं के आसपास पीने योग्य स्वच्छ जल होना आवश्यक है। पशुओं को थोड़ा सा नमक चाटने के लिये दिया जाना चाहिए। बाजार में खनिज लवण मिश्रण "मेंडिफ", "शुद्ध मिडिक", "कैटिलमीन" आदि अनेक नामों से उपलब्ध है जिनका उपयोग 20–25 ग्राम प्रति पशु प्रतिदिन के हिसाब से किया जा सकता है

दूध देने वाले पशुओं के लिए जई, जौ तथा चना श्रेष्ठ खाद्य हैं, इनसे कैल्शियम, फास्फोरस और आयोडीन पायी जाती है। इसके बाद अरहर, ज्वार तथा मक्का पशुओं के लिए लाभकारी होता है साधारणतया गेहूँ, जौ का भूसा, ज्वार और बाजरे की कुट्टी पशुओं को खिलाना चाहिए। जौ का चोकर तथा धान का कन्ना खिलाना लाभदायक होता है। हरे खाद्य जैसे मटर बेलें, अरहर की शाखायें, बारीक काट कर खिलाना चाहिए। खली, चूनी, चोकर आदि चारे में मिलाकर खिलाने से पशु बड़े चाव से खाते हैं। बिनौला तथा मूँगफली की खली खिलाने से पशुओं में दूध की मात्रा और दूध में मक्खन की वृद्धि होती है अलसी की खली सुपाच्य होने के साथ–साथ कब्ज नहीं होने देती।

दुधारू पशु को प्रतिदिन खुले चरागाह में साफ–सुथरी हरी घास–पात चराना आवश्यक है क्योंकि इस प्रकार इनकी सैर हो जाती है और वे जड़ी–बूटियों को भी चर लेती है जिससे उन्हें संतुलित और पौष्टिक भोजन मिल जाता है।

पशुओं का गर्भ काल – सामान्यतया गाय का गर्भकाल 283 दिनों का होता है जबकि भैंस का गर्भ काल 310 दिनों का होता है। गायों में कामवासना उत्पन्न होने को सामान्य भाषा में गरमाना कहते हैं। गाय के गरम होने पर उसकी आँखें लाल हो जाती हैं, वह चिल्लाने या रम्भाने लगती है, बार–बार दूसरी गायों पर चढ़ने का प्रयास करती है, पूँछ ऊपर उठाती है तथा व्याकुलता के साथ भागने का यत्न करती है। पशु की योनि से फीके रंग का गाढ़ा तरल पदार्थ निकलता रहता है जो प्रायः उसकी पूँछ और पुट्ठों पर जम जाता है। कभी–कभी पशु योनि में सूजन भी दिखाई पड़ती है। गाय की गर्मी 12 से 24 घन्टे तक रहती है और प्रत्येक 19 से 21 दिन पर पुनः गरमा जाती है। गाय जब गरमी की चरम सीमा पर हो तो उसे उत्तम नस्ल के सांड से पाल खिलायें पा कृत्रिम विधि से (उत्तम नस्ल के वीर्य से) गर्भाधान करायें। आजकल गायों को गर्भ ठहराने के लिए कृत्रिम गर्भाधान विधि बहुत प्रचलित है जो प्रायः प्रत्येक मवेशी अस्पताल में उपलब्ध है। इस क्रिया में उत्तम नस्ल के नर पशुओं के वीर्य को पिचकारी द्वारा मादा पशु के गर्भाशय में पहुँचाकर गर्भ ठहराया जाता है गर्भाधान हेतु प्रातः या सायं का समय अधिक उपयुक्त होता है।

गर्भस्थ पशु की देख भाल – गाय व्याने के 30–45 दिन पहले ही दूध लेना बन्द कर देना चाहिए। गर्भस्थ पशु को अधिक दूर तक तेज गति से चलने तथा अन्य पशुओं से लड़ने से रोकना चाहिए। बार–बार गर्भपात होने वाले पशुओं को व्याने के 7–10 दिन पहले अन्य पशुओं से अलग स्थान पर रखना चाहिए। व्याने के 7–10 दिन पहले और बाद तक पशु को हल्का सुपाच्य आहार देना चाहिए जिससे कब्ज न होने पाये। उसके बाद धीरे–धीरे सामान्य खुराक पर लाना चाहिए। पशु के पास नमक का ढेला रखें जिससे पशु आवश्यकता पड़ने पर चाट सके। पशु के रहने के स्थान पर पुआल का नर्म बिछावन लगावें परन्तु गन्दगी (गोबर और मूत्र) आदि होने पर नियमित सफाई करते रहें। यदि पशु को कब्जियत हो तो तेज दस्त लाने वाली औषधि का प्रयोग न करें बल्कि 600 ग्राम अलसी का तेल दें। गाय ब्याने के एक दिन पहले और एक दिन बाद 450 ग्राम काला नमक, एक चाय के चम्मच के बराबर अदरख का चूर्ण लगभग 1.5 लीटर गुनगुने पानी में घोलकर पशु को दें। ब्याने के एक सप्ताह पहले से ही पशु को हल्का गुनगुना शुद्ध जल पीने को दें साथ ही शीत से बचायें।

ब्याने के समय की सावधानी – ब्याने के समय समस्त क्रियायें स्वाभाविक रूप से होने दें किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें परन्तु सावधानी पूर्वक दूर से निरीक्षण करते रहें और कोई कठिनाई होने पर पशु चिकित्सक या अनुभवी व्यक्ति से तुरन्त सहायता लें। गुड़, अदरख तथा नमक मिश्रित गेहूँ के चोकर की हल्की गर्म दलिया ब्याने के पहले और बाद में पशु को दें। पशु के थन को हल्के गर्म पानी से अच्छी तरह धो कर सुखा लें फिर बच्चे को दूध पिलायें। ध्यान रखें ब्याने के 5–6 घंटे के अन्दर ही पशु जेर (गर्भपोष या खेडी) निकाल देती है। यदि इतने समय में जेर न निकले तो पशु चिकित्सक की सहायता लें। बच्चे को 5–6 घंटे के अन्दर ही उसकी मां का पहला दूध निश्चित रूप से पीने दें।

बछड़े–बछियों की देख–भाल : नन्हें बछड़े–बछियों को दूसरे पशुओं और सर्दी से बचायें तथा सूखा पुआल बिछाकर जगह को नर्म रखें। बछड़े–बछियों को दूध पिलाने के बाद उनके मुँह को साफ करें और मुँह पर जाली बाँधे वे मिट्टी आदि न खाने पायें।

बच्चों को दस दिन तक केवल दूध ही पीने दें इसके बाद हल्का चारा धीरे–धीरे खिलाने की आदत डालें। कुछ दिन बाद वह स्वयं ही खाने लगता है। बछड़े–बछिया जब बड़े होने लगें तो उन्हें प्रतिदिन कुछ दूर घूमने, उछलने–कूदने दें जिससे उनकी कसरत हो जाती है और चरने की आदत पड़ती है।

दूध निकालना – दूध देने वाले पशु को न तो डराना चाहिए और न ही उत्तेजित करना चाहिए ऐसा करने से उनमें मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। पशु को स्वच्छ रखें तथा प्रतिदिन खरखरा करें जिससे उसकी त्वचा में रक्त का संचालन ठीक हो और धूल मिट्टी आदि झर जाये। स्वच्छ स्थान पर दूध निकालें। दूध के बर्तन को साबुन और गर्म पानी से अच्छी तरह प्रति दिन साफ करें। दूध निकालते समय हाथ अच्छी तरह से साफ कर सुखा लें। गाय के थन को भी अच्छी तरह से धो कर सुखाने के बाद दूध निकालें। दूध निश्चित समय पर ही निकालें। दूध नरमाई और शीघ्रता से निकालें।

दूध एक पौष्टिक आहार – दूध एक प्राकृतिक और पौष्टिक आहार है। दूध में मुख्य रूप से जल, वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट खनिज लवण और विटामिन्स पाये जाते हैं। अलग–अलग पशुओ के दूध मे विभिन्न अवयवों की मात्रा अलग–अलग होती है।

दूध में मुख्य रूप से पाया जाने वाला प्रोटीन केसीन कहलाता है जो समस्त एमीनों अम्लों से परिपूर्ण होता है। केसीन के अतिरिक्त एल्ब्यूमीन, ग्लोबूलीन तथा प्रोटीओस पेप्टोन प्रोटीन भी मिलता है। मानव शरीर के ऊतकों के निर्माण करने, ऊतकों की रक्षा करने, पाचक रसों के निर्माण करने, हार्मोन्स की क्रिया को सामान्य रूप से संचालित करने का कार्य प्रोटीन करता है। लैक्टोज़ के रूप में पाया जाने वाला कार्बोहाइड्रेट मुख्य रूप से मानव शरीर में शक्ति प्रदान करता है जबकि दुग्ध वसा शरीर में शक्ति के साथ ऊष्मा बनाये रखने में सहायक है। अस्थियों के सामान्य विकास के लिए आवश्यक लगभग समस्त खनिज दूध में प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। शुद्ध दूध गर्भवती माताओं, बढ़ते बच्चों, युवाओं, प्रौढ़ों, दुर्बल–अशक्त व्यक्तियों, पुनः स्वास्थ्यलाभोन्मुख व्यक्तियो रोगियों के लिए समान रूप से आवश्यक, प्राकृतिक, आदर्श पौष्टिक आहार है।

दूध एवं जन स्वास्थ्य – जहां शुद्ध दूध प्रकृति का एक वरदान है वहीं गन्दगी तथा असावधानी वश यह संक्रमित होकर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करने में सहायक होता है। कभी–कभी दुग्ध जनित रोग इतने व्यापक होते हैं कि महामारी का रूप धारण कर लेते हैं। दुग्ध सक्रमण के कारण निम्न रोग हो सकते हैं।

पशु द्वारा दूध का संक्रमण : पशु के गन्दे थन, गोबर–मूत्र जैसे अपशिष्ट पदार्थो द्वारा दूध दूषित हो जाता है और इनके उपयोग करने वालों में बोवाइन ट्यूबरकुलोसिस तथा माल्टा फीवर जैसे रोग की सम्भावना बढ़ जाती है।

रोगी मनुष्यों द्वारा दूध का संक्रमण – पशु के सम्पर्क में रोगियों के आने के कारण दूध संक्रमित हो जाता है। कभी–कभी रोगियों के रोगाणु दुग्ध–पात्रों, बोतलों, पानी, कीट–पतंगों आदि के माध्यम से दूध में पहुँच जाते हैं और इस संक्रमित दूध का उपयोग करने वाले व्यक्तियों मे सेप्टिक सोर थ्रोट, डिप्थिरिया, स्कारलेट फीवर, टायफायड, पैराटायफायड, गैस्ट्रोइन्टेराइटिस, डिसेन्ट्री जैसे भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अतः आवश्यक है कि शुद्ध, स्वास्थ्यवर्धक एवं संक्रमण रहित दूध प्राप्त करने के लिए पशुशाला की नियमित सफाई पर ध्यान दें, पशु को स्वच्छ ताजा जल तथा संतुलित आहार देते हुये रोग मुक्त रखें, दूध निकालने वाले या पशुपालक की नियमित चिकित्सीय जाँच करायें और दूध दुहते समय स्वच्छता का अत्यधिक ध्यान रखें। दुग्ध पात्रों को नियमित रूप से विसक्रमित करते रहें और समय–समय पर पशु शाला में कीटनाशी दवाओं का उचित छिडकाव करायें। कच्चे दूध का उपयोग कदापि न करें बल्कि दूध को अच्छी तरह से खौलाने या पाश्चुरीकृत करने के बाद ही उपयोग करें।

समन्वयक, जिला विज्ञान क्लब, सोनभद्र

विभिन्न पशुओं में दूध के अवयव

दूध के अवयव	मात्रा प्रतिशत में			
	गाय	भैंस	बकरी	भेंड
जल	86.6	84.2	86.5	80.71
वसा	4.6	6.6	4.5	7.9
प्रोटीन	3.4	3.9	3.5	5 2.3
लैक्टोस	4.9	5.2	4.7	4.81
खनिज लवण	0.7	0.8	0.8	0.9

प्राकृतिक सगंध पौधे

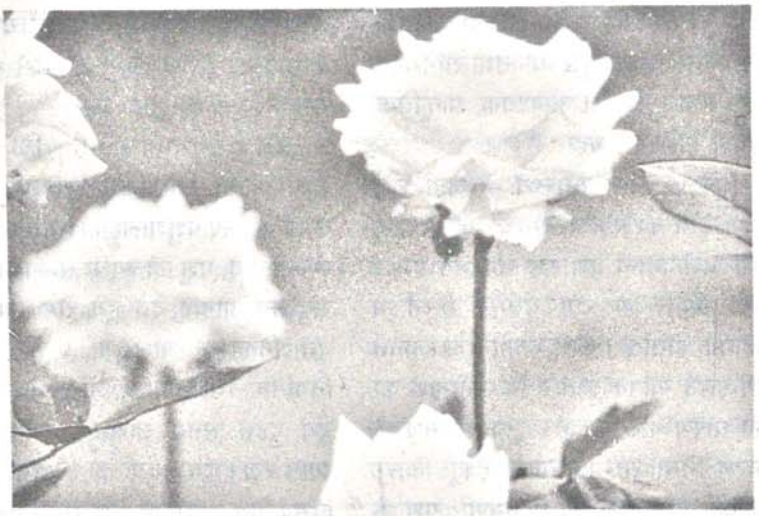

सुगंध हमारे जीवन में बड़ा महत्व रखती है। सुगंध का उपयोग अति प्राचीन समय से होता आ रहा है। कहते हैं कि सुगंध का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव इतिहास है। पौधों से प्राप्त होने वाली सुगंध को प्राकृतिक सुगंध कहा जाता है। सुगंध देने वाले पौधों को सगंध पौधे या एरोमेटिक पौधे कहा जाता है। भारत में पौधों की 1000 से भी अधिक जातियों में सुगंध देने वाले तत्व पाये जाते हैं। भिन्न–भिन्न प्रकार की जलवायु तथा पारिस्थितिक अवस्थाओं के कारण भारत में विभिन्न प्रकार के सगंध पौधों को प्रवर्तित करने की बड़ी संभावनायें हैं।

पौधों में सुगंध उनमें विद्यमान सगंध तेलों के कारण होती है जिन्हें वाष्पशील तेलों के नाम से भी जाना जाता है। ये सगंध तेल गुणों और रासायनिक संघटन में अवाष्पशील तेलों की तुलना में एकदम भिन्न होते हैं। ये हल्के, अत्यन्त सुगन्धित द्रव होते हैं जिनका आसवन बिना अपघटन के किया जा सकता है। अधिकतर वाष्पशील तेलों में 'टरपीन' नामक हाइड्रोकार्बन होते हैं। ये तेल खुले में रखने पर वायुमंडलीय हवा के संपर्क में आकर उड़ जाते हैं।

अनेक पौधों में सगंध तेल, गोंद, रेज़िन और बालसम के साथ मिलते हैं। पौधों में पाई जाने वाली लाक्षणिक सुगंध इन्हीं सगंध तेलों के कारण होती है। ऐसा समझा जाता है कि ये सगंध तेल पौधों में प्रकाश संश्लेषण के दौरान बनने वाले परोक्ष उत्पाद होते हैं। लेकिन कुछ सगंध तेल ग्लुकोसाइड के अपघटन से भी बनते हैं।

सगंध तेल पौधे के लगभग सभी भागों से प्राप्त किये जाते हैं। खसखस की जड़ों, अदरक के प्रकन्दों, जिरेनियम और पुदीने के गूदेदार तनों व पत्तियों, यूकेलिप्टस की पत्तियों, गुलाब के फूलों, चन्दन की लकड़ी, संतरे के छिलकों तथा वैनिला व धनिये आदि के फलों में सगंध तेल उपस्थित रहते हैं। सगंध पौधे और उनमें निहित सगंध रसायन हमारे दैनिक जीवन में एक जीवन्त भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के तौर पर हम सभी अपने खाने में मसालों का इस्तेमाल करते हैं। ये सभी मसाले सुगंधित होते हैं और और इन्हें पौधों से ही प्राप्त किया जाता है। यूकेलिप्टस, कपूर, लेमन ग्रास, अजवायन और सोया आदि के तेल औषधीय तेलों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

खसखस का तेल जड़ों व अदरक का तेल प्रकंदों से प्राप्त किया जाता हे। यूकेलिप्टस, लेमन ग्रास, सिट्रोनेला, जिंजर ग्रास, जिरेनियम, पिपरमिंट, मैजेरिम, पटचौली, लेवेण्डर, रोजमेरी, कपूर के तेल काष्ठ एवं छाल से भी प्राप्त किये जाते हैं।

संतरा कुल के फलों के छिलकों, वैनिला, अजवायन, सोया, नटमैग, इलायची आदि के सगंध तेल बीजों से प्राप्त किये जाते है।

पौधों और फूलों से बनाये गये तेल और इत्र अपनी सुगंध से अनेक व्याधियों का इलाज कर सकते हैं। सुगंध द्वारा इलाज की इस पद्धति को आज विश्व भर में मान्यता मिल रही है। शरीर पर या चेहरे पर मालिश करने पर तरोताजगी और चुस्ती प्राप्त होती है।

प्रत्येक तेल व इत्र अपना अलग गुण व स्वभाव रखता है। कई तेल प्रतिरोधी की तरह काम करते हैं, कुछ उदासी या सुस्ती के अहसास को दूर करके चुस्ती और स्फूर्ति का संचार कर देते हैं।

भारतीय औषध शास्त्र में चंदन, तुलसी, गुलाब, पुदीना, अजवायन तथा सौंफ आदि जैसे सगंध पौधों ने सबसे पहले स्थान लिया।

पौधों से प्राप्त सुगंध का उपयोग आज भिन्न–भिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों, श्रृंगार, परिरक्षकों, मिष्ठान्न, सुवास एवं औषधों में किया जाता है। रोजमर्रा के तौर पर सुगंध का इस्तेमाल साबुनों, डिटरजेंट, टूथपेस्ट, पाउडर, गंधहारकों, पेयों इत्यादि में किया जाता है।

वॉलंटरी हेल्थ एसोसिएशन आफ इंडिया (वीहाई)

वालंटरी हेल्थ एसोसिएशन आफ इंडिया (वीहाई) 'भारत के लोगों के लिए स्वास्थ्य को एक वास्तविकता' बनाने वाले प्रयास" के उत्साहपूर्ण अनुकरण का एक परिणाम है। आज वीहाई, भारत के विभिन्न प्रांतों के भिन्न पृष्ठभूमि वाले लोगों के सहारे एक सुदृढ़ संगठन के रूप में खड़ी है। यह देश भर के कोने–कोने में फैले अपने सदस्य संगठनों तथा सहायकों के साथ–साथ, देश भर के एक लाख स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं के नेटवर्क द्वारा सक्रिय है।

वीहाई के 25 साल के इतिहास को तीन भिन्न चरणों में देखा जा सकता है। पहले चरण में 1969 से 1974 तक संगठन ने "कोआर्डीनेटिग एजेंसी फार हेल्थ प्लैनिंग" (सी.ए.एच.पी.) के रूप में कार्य लिया।

दूसरे चरण को, किशोरावस्था कहा जा सकता है जोकि 1974 से 1986 तक थी। इसे सही मायनों में 'टौंग युग' कहा जाना चाहिए। इस दौरान इसके प्रवर्तक फादर टौंग ने मिले–जुले सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की व्यापक परिधि के संगठित स्वास्थ्य शिक्षा तथा विभिन्न स्तरीय स्वास्थ्य कार्य प्रणालियों के संयुक्तीकरण के रूप में इसे विकसित किया।

सन् 1987 के बाद की अवधि के तीसरे चरण को वयस्क के रूप में समझा जा सकता है। यह अवधि सुदृढ़ीकरण, नेटवर्किंग तथा पैरोकार (अधिवक्ता) के अतिमहत्त्वपूर्ण दौर के रूप में देखी जा सकती है।

एक संगठन के रूप में स्थापना

जनवरी 1969 में जेनेवा के मेडिकल कमीशन आफ द वर्ल्ड काउंसिल आफ चर्चेज के निदेशक श्री जेम्स मैक्गिलव्रे ने बंगलौर में देश में कार्यरत ईसाई स्वास्थ्य सेवा व्यवस्था के मुखियाओं की एक गोष्ठी आयोजित की। उनकी सामान्य चिंता थी कि "उन लाखों ग्रामीण गरीबों तक स्वास्थ्य सेवाएं कैसे पहुंचाई जाएं, जिन्होंने कभी भी जीवन में अस्पताल के द्वार को नहीं लांघा है।" वे सभी जानते थे कि ये लाखों लोग शहरी अस्पतालों में स्वास्थ्य सेवाओं को पाने का अवसर गरीबी तथा दूसरी समस्याओं की वजह से नहीं पा सके, लेकिन उन्हें प्राथमिक एवं न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाओं की जरूरत है। लगातार 5 दिनों की सार्थक बहस के बाद यह बात उभर कर आई कि लोगों को भविष्य में स्वास्थ्य सेवाएं, उनके पास पहुंचकर दी जाएं।

सी.ए.एच.पी. वीहाई के रूप में

28 सितम्बर 1974 को मद्रास के स्टेला मारिया कालेज में हुए सम्मेलन में राज्य वालंटरी हेल्थ संगठनों ने यह तय किया कि एक राष्ट्रीय संघ "वालंटरी हेल्थ एसोसिएशन आफ इंडिया (वी.एच.ए.आई.)" का गठन किया जाए; उन्होंने यह महसूस किया कि सी.ए.एच.पी. ने हालांकि विशेष लक्ष्य 'सामुदायिक स्वास्थ्य प्रक्रिया' को काफी हद तक देश में व्यापकता से बढ़ाया जबकि नये संघ का कार्यभार और अधिक व्यापक था। इस सम्मेलन के दौरान वीहाई के लिए एक नई संगठनात्मक संरचना को भी तैयार किया गया।

वीहाई की सदस्यता सभी राज्यों/संघशासित प्रदेशों तथा क्षेत्रीय स्वैच्छिक स्वास्थ्य संगठनों के लिए उनके सहयोगियों के साथ उपलब्ध की गई। राज्य वी.एच.ए. के चयनित सदस्य आम सभा के प्रतिनिधि बनाये गये। यह आम सभा एक कार्यकारी परिषद का चुनाव वार्षिक आमसभा के दौरान करती है। वीहाई के आधारभूत सिद्धांत वस्तुतः सी.ए.एच.पी. के लक्ष्य एवं उद्देश्यों का विस्तार और पुनःप्रारंभ था।

एक सेवा संगठन के रूप में, वीहाई कम लागत वाले समुदाय आधारित नवाचारी स्वास्थ्य कार्यक्रमों के विकास में सहायता देती है और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य से जुड़े संगठनों के बीच रिश्तों को सुदृढ़ बनाती है। वीहाई ने विभिन्न सम्मेलनों एवं गोष्ठियों के आयोजनों द्वारा संगठित नीतियों एवं अच्छे सहयोगियों को विकसित किया तथा अलग–थलग पड़े सदस्यों को साम्प्रदायिकता और संकीर्णता के दायरे से बाहर उबारा।

वीहाई की भूमिका को संक्षेप में फादर टौंग के शब्दों में यूं कह सकते हैं, "वी.एच.ए. आंदोलन की एक आधार भूत प्रेरणा यह है कि यह स्वैच्छिक क्षेत्र के सभी स्वास्थ्य संस्थानों को बिना किसी धार्मिकता या सामुदायिक जुड़ाव के अपनाती है। वीहाई किसी के साथ भी कार्मिकों, सामुदायिक या धार्मिक पूर्वाग्रह के साथ हस्तक्षेप नहीं करती है लेकिन सभी सदस्यों के बीच बेहतर स्वास्थ्य सेवा हेतु सामान्य उपलब्धियों को पहुंचाने की कोशिश के लिए विशेष रूप से गरीबों को सहयोग देती है।

वीहाई ने सभी दूसरी संस्थाओं को अपनी सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाओं को शुरू करने, सुधारने या अपनी समस्याओं से निपटने में मदद पहुंचाई है। वीहाई ने सम्पूर्ण स्वास्थ्य (होलिस्टिक हेल्थ) आंदोलन विकसित करने में योगदान किया। इसमें स्वास्थ्य में पर्यावरण के पहलू जैसे पानी, स्वच्छता, खाद्य एवं सामाजिक न्याय तथा उचित तकनीकी को भी शामिल किया गया है। यह बिना दवा के, कम मूल्य की दवाओं, गैर एलोपैथिक उपचार प्रक्रिया, जो कि

सांस्कृतिक एव आर्थिक रूप से ज्यादा स्वीकार्य है, और एक कम लागत की वैकल्पिक उपचार प्रक्रिया को उपलब्ध कराने पर जोर देता है।

संपर्क

वीहाई ने सक्रिय तौर पर सभी राज्य वी. एच.ए., सरकारी संस्थाओं तथा अन्य स्वैच्छिक संगठनों के बीच देश तथा विदेशों तक संपर्क निभाने का कार्य किया। वीहाई ने इस प्रतिनिधित्व को निभाया और अनेक मुद्दों को विशेष रूप से स्वैच्छिक क्षेत्रों द्वारा झेली जानेवाली तमाम आम समस्याओं को सरकार के सामने उठाया।

वीहाई ने किताबें, परचे, पोस्टर, फ्लैशकार्ड, स्लाइड्स तथा फिल्म स्ट्रिप्स प्रकाशित किये। वीहाई के अनेक प्रकाशनों के साथ "पेशेन्ट रिटेंड हेल्थ रिकार्ड", "बेटर चाइल्ड केयर" तथा "जहां डाक्टर न हो" को व्यापक रूप से स्वीकृति एवं लोकप्रियता प्राप्त हुई। साथ ही स्लाइड और फिल्म का सहारा लेकर भी जन शिक्षा को बढ़ाया गया।

कमजोरियां

वीहाई ने लगातार यह प्रयास किया है कि वह ईसाई अस्पताल संगठन की छवि से बाहर निकल कर आये। अनेक राज्य वी. एच.ए. कमजोर थे और पूर्वानुमान एवं प्रेरणा से रहित थे। उनके विकास की क्षमता सीमित ही रही। कुछ ने ज्यादा सदस्यता के प्रति चिंता की तो कुछ अपने स्वत्त्व के लिए अस्पतालों पर निर्भर हो गए।

वीहाई द्वारा प्रवर्तित स्वास्थ्य सेवा की नई विचारधारा गहरी जड़ें पकड़ने लगी हैं। इस नई विचारधारा का सार दो शब्दों – 'सामुदायिक स्वास्थ्य' में निहित है। सामुदायिक स्वास्थ्य का मतलब था समुदाय से शुरुआत, एक स्वस्थ समुदाय के लिए काम करना तथा उसे स्वस्थ बनाए रखने के लिए मदद पहुंचाना। वीहाई ने लोगों को स्वास्थ्य को एक अधिकार के रूप में मांगने में सहायता पहुंचाई जो कि किसी राष्ट्र/राज्य की जिम्मेदारी बनती है। वीहाई प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा के लिए खड़ी हुई और उसे अस्पतालों तथा स्वास्थ्य शिक्षा के साथ पिरामिड के आधार के रूप में माना।

नई प्रत्याशाएं, नई भूमिकाएं

वीहाई के इतिहास का तीसरा अध्याय 1987 के प्रारंभ से शुरू होता है। जिसमें अनेक कार्यक्रमों को पुनः नए उत्साह और व्यापक सामाजिक परिवेश के साथ शुरू किया गया। इसमें व्यापक मुद्दों को; जैसे – आहार नीति और पोषण, काम–धंधे के खतरे, कीटाणुनाशक विकलांगता, स्वच्छता और पीने का पानी, महाविपदा प्रबंधन, महिला एवं स्वास्थ्य, निजी चिकित्सा सेवा क्षेत्र तथा जनसंख्या आदि को शामिल किया गया।

वीहाई ने एक उपभोक्ता सेल स्थापित किया ताकि लोगों में स्वास्थ्य और उपभोक्ता मुद्दों के बारे में जागरूकता कायम हो सके। वीहाई उपभोक्ता कार्यकर्ताओं के एक नेटवर्क–वीकैन (वालंटरी कंज्यूमर एक्शन नेटवर्क) का प्रोत्साहक सदस्य भी है। वीहाई ने इस विषय पर अनेक गोष्ठियाँ एवं कार्यशालायें आयेजित कीं तथा अनेक पुस्तकें, पर्चे और पोस्टर आदि भी उपभोक्ता संरक्षण पर निकाले।

वीहाई सक्रिय रूप से तम्बाकू विरोधी अभियान में शामिल रही और एक्शन (एक्शन टू काम्बैट टोबैको इन इंडिया आर्गेनाइज़ेशनल नेटवर्क) का एक हिस्सा बनकर प्रभावी रूप से इस जन स्वास्थ्य समस्या को उठाया।

वीहाई ने सुरक्षित तरीकों से कीटाणुनाशकों के प्रयोग के अभियान को आगे बढ़ाया। यह कार्य "नेशनल पेस्टीसाइड एक्शन कमेटी" नामक सलाहकार दल के गठन के बाद सुगठित स्वरूप पा गया।

वीहाई "ट्रेडीशनल सिस्टम आफ मेडिसिन" (परम्परागत चिकित्सा पद्धति) का खुले विचारों के साथ समर्थन कर रही है क्योंकि इस पद्धति की स्वास्थ्य की बेहतरी में महत्वपूर्ण भूमिका है। वीहाई ने पूरे देश में परम्परागत चिकित्सा पद्धति को बढ़ावा देने व मजबूती प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण एवं जागरूकता के लिये एक वीडियो फिल्म 'हर्बल मेडिसिन' (जड़ी बूटी चिकित्सा) तथा चिकित्सीय पौधों के महत्व पर 125 स्लाइडों का सेट तैयार किया है। वीहाई ने इस चिकित्सा पद्धति को सुदृढ़ बनाने हेतु उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों के लिए एक–एक प्रशिक्षण केन्द्र भी स्थापित किया है।

वीहाई आज भी परम्परागत चिकित्सा पद्धति के औचित्यपूर्ण प्रयोग के लिए तथा एक उचित औषध नीति के लिए संघर्षरत है। वीहाई ने आयुर्वेदिक दवाओं के व्यापारीकरण के विरोध में आवाज बुलंद की है।

वीहाई का उचित दवा अभियान भी एक सुसंगत राष्ट्रीय दवानीति के लिए कार्यरत है। दवा नीति में कुछ आवश्यक बदलावों के लिए वीहाई द्वारा सरकार को अनेकों प्रतिवेदन भेजे जा चुके हैं। संसद सदस्यों के सहयोग तथा अन्य नेटवर्क सहयोगी संस्थाओं की सहायता से सरकार पर दबाव डाला जा रहा है ताकि सरकार की दवा नीति उद्योगपतियों की अपेक्षा उपभोक्ता के हितों के परिप्रेक्ष्य में बनाई जाए। वीहाई की वीडियो फिल्म "पिल्स, प्रोफिट एंड पोलिसीज" के अंतर्गत उचित दवा प्रयोग तथा दवा नीति के महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है।

भारत में स्वास्थ्य की स्थिति समझने और मूल्यांकित करने के लिए 'स्टेट ऑफ इंडिया'ज हेल्थ रिपोर्ट' वीहाई का एक अति महत्त्वपूर्ण कदम है। यह विशाल शोध कार्य, वीहाई द्वारा सरकार का ध्यान देशभर के स्वास्थ्य कार्यक्रमों के नियोजन एवं कार्यन्वयन में होने वाले कुछ महत्वपूर्ण असंतुलनों की ओर खींचने में मददगार साबित हुआ है।

मस्तरामजी

चित्राकंन : सन्दीप सेन
लेखक : पं० काशीनाथ गोरे

आँखों से कीटाणुओं को देख पाना असंभव है ....

परन्तु सूक्ष्मदर्शी से वे दिखाई पड़ जाते है.. चलिए .. वैद्यशाला में आपको दिखवाता हूँ !

वैद्यशाला में खिड़की के पास एक सूक्ष्मदर्शी यंत्र रखा हुआ था.

वैद्यजी ने उसमें देखना शुरु किया.

सूक्ष्मदर्शी में शीशे के एक टुकड़े पर पानी की कुछ बूंदें डाल दी.

आइए मस्तरामजी! आप भी देखिए !

अरे ! इसमें तो अनेक प्रकार के कीड़े दिखाई पड़ रहे है.

कुछ तो बहुत ही भयंकर और घिनौने हैं !

हाँ, अब आपने देखा कि कीटाणु कैसे होते है.

कुछ कीटाणु इनसे भी सूक्ष्म होते हैं !

सूक्ष्मदर्शी से भी उन्हें देख पाना मुश्किल हो जाता है!

विषाणुओं की सूक्ष्मता का अंदाज इस बात से लगेगा कि-

"एक बिन्दु (·) में कई लाख विषाणु समा सकते हैं."

इसीलिए हाथों को पीने के पानी में नहीं डुबोना चाहिए.

"किसी वस्तु को खाने से पूर्व भली प्रकार देख लें कि वह साफ है या नहीं !"

"खाने से पूर्व अपने हाथों को अच्छी तरह धोना चाहिए, ताकि कोई मैल न रहे.

"भोजन के बाद भी हाथ भलीभांति धोने चाहिए और ..

"मुँह में पानी भरकर अच्छी तरह कुल्ला करें ताकि अन्नकण मुँह में न रह जाएं."

वैद्यजी ! आपने बहुत अच्छी बातें बताई और क्या ध्यान रखा जा सकता है?

भोजन करते समय किसी दूसरे का झूठा नही खाना चाहिए.

वैद्यजी ! ऐसा क्यों ?

क्योंकि संभव है उसे कोई रोग हो और उसके कीटाणु उसके मुँह से या हाथ से अन्न में आ जाएं !

"खाना खाते समय यथा संभव दाहिने हाथ का प्रयोग करना चाहिए

क्रमशः

शुभकामनाओं सहित

बायो-वेद, इन्क

(जड़ी बूटियों से भविष्य की औषधियां)

शोध तन्त्र :

- ✧ अंतर्विषयी विज्ञान का उच्चतर प्रशिक्षण एवं शोध संस्थान
- ✧ राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला
- ✧ फार्मेसी कालेज, पुणे
- ✧ आयुर्वेद कालेज एवं शोध संस्थान
- ✧ बायो-वेद प्रयोगशालायें

विशिष्ट शोध क्षेत्र :

- ✧ संधिशोथ
- ✧ त्वचा विज्ञान
- ✧ प्रतिरक्षातंत्र

पुणे कार्यालय : 6, प्रदीप चैम्बर्स, भन्डारकर इंस्टीट्यूट रोड
पुणे – 411005
फोन : (0212)-370711, फैक्स : 357944

रजि. कार्यालय: (अमेरिका) 911 बर्न कोर्ट, सैन जोस, सीए - 95112
फोन : (408) 441 - 6380 फैक्स : (408) 441 - 6382

रजि. न. 51103 / 90

जीवनीय

स्वास्थ्य पत्रिका

जनवरी					
रवि		5	12	19	26
सोम		6	13	20	27
मंगल		7	14	21	28
बुध	1	8	15	22	29
गुरु	2	9	16	23	30
शुक्र	3	10	17	24	31
शनि	4	11	18	25	

फरवरी					
रवि		2	9	16	23
सोम		3	10	17	24
मंगल		4	11	18	25
बुध		5	12	19	26
गुरु		6	13	20	27
शुक्र		7	14	21	28
शनि	1	8	15	22	

मार्च					
रवि	30	2	9	16	23
सोम	31	3	10	17	24
मंगल		4	11	18	25
बुध		5	12	19	26
गुरु		6	13	20	27
शुक्र		7	14	21	28
शनि	1	8	15	22	29

अप्रैल					
रवि		6	13	20	27
सोम		7	14	21	28
मंगल	1	8	15	22	29
बुध	2	9	16	23	30
गुरु	3	10	17	24	
शुक्र	4	11	18	25	
शनि	5	12	19	26	

मई					
रवि		4	11	18	25
सोम		5	12	19	26
मंगल		6	13	20	27
बुध		7	14	21	28
गुरु	1	8	15	22	29
शुक्र	2	9	16	23	30
शनि	3	10	17	24	31

जून					
रवि	1	8	15	22	29
सोम	2	9	16	23	30
मंगल	3	10	17	24	
बुध	4	11	18	25	
गुरु	5	12	19	26	
शुक्र	6	13	20	27	
शनि	7	14	21	28	

जुलाई					
रवि		6	13	20	27
सोम		7	14	21	28
मंगल	1	8	15	22	29
बुध	2	9	16	23	30
गुरु	3	10	17	24	31
शुक्र	4	11	18	25	
शनि	5	12	19	26	

अगस्त					
रवि	31	3	10	17	24
सोम		4	11	18	25
मंगल		5	12	19	26
बुध		6	13	20	27
गुरु		7	14	21	28
शुक्र	1	8	15	22	29
शनि	2	9	16	23	30

सितम्बर					
रवि		7	14	21	28
सोम	1	8	15	22	29
मंगल	2	9	16	23	30
बुध	3	10	17	24	
गुरु	4	11	18	25	
शुक्र	5	12	19	26	
शनि	6	13	20	27	

अक्तूबर					
रवि		5	12	19	26
सोम		6	13	20	27
मंगल		7	14	21	28
बुध	1	8	15	22	29
गुरु	2	9	16	23	30
शुक्र	3	10	17	24	31
शनि	4	11	18	25	

नवम्बर					
रवि	30	2	9	16	23
सोम		3	10	17	24
मंगल		4	11	18	25
बुध		5	12	19	26
गुरु		6	13	20	27
शुक्र		7	14	21	28
शनि	1	8	15	22	29

दिसम्बर					
रवि		7	14	21	28
सोम	1	8	15	22	29
मंगल	2	9	16	23	30
बुध	3	10	17	24	31
गुरु	4	11	18	25	
शुक्र	5	12	19	26	
शनि	6	13	20	27	